आलो–आँधारि*

– ***बेबी हालदार***

मैं अब अपने किराये के घर में थी। सब समय सोचती रहती कि काम न मिला तो बच्चों को क्या खिलाऊँगी, कैसे उन्हें पालूँगी-पोसूँगी! मैं स्वयं एक घर से दूसरे घर काम खोजने जाती और दूसरों से भी काम जुटाने के लिए कहती। मुझे यह चिंता भी थी कि महीना खत्म होने पर घर का किराया देना होगा। पता नहीं इससे कम किराये में कोई घर मिलेगा या नहीं! काम के साथ मैं घर भी ढूँढ़ रही थी। डेढ़ सप्ताह हुए जा रहे थे और काम कहीं मिल नहीं रहा था। मुझे बच्चों के साथ उस घर में अकेले रहते देख आस-पास के सभी लोग पूछते, तुम यहाँ अकेली रहती हो? तुम्हारा स्वामी कहाँ रहता है? तुम कितने दिनों से यहाँ हो? तुम्हारा स्वामी वहाँ क्या करता है? तुम क्या यहाँ अकेली रह सकोगी? तुम्हारा स्वामी क्यों नहीं आता? ऐसी बातें सुन मेरी किसी के पास खड़े होने की इच्छा नहीं होती, किसी से बात करने की इच्छा नहीं होती। बच्चों को साथ ले मैं उसी समय काम खोजने निकल पड़ती। कुछ घंटों बाद जब मैं घर लौटती तब फिर पड़ोस की औरतें आकर पूछतीं, क्यों, काम मिला? फिर मेरे चेहरे का भाव देख कोई-कोई मुँह से चुक-चुक आवाज़ निकाल कहती, मिल जाएगा। इधर-उधर ढूँढ़ने-ढाँढ़ने से मिल ही जाएगा। मैं उनकी बातें अनसुनी कर अपने बच्चों की बातें करने लगती।

---

* *अँधेरे का उजाला*

मेम साहब की कोठी के सामने की एक कोठी में सुनील नाम का तीस-बत्तीस साल का एक युवक मोटर चलाता था। वह मुझे पहचानता था इसलिए मैंने उससे भी अपने काम के बारे में कह रखा था। एक दिन रास्ते में मुझे देखकर उसने पूछा, तुम क्या अब उस कोठी में काम नहीं करतीं? मैंने कहा, मुझे उस कोठी को छोड़े डेढ़ सप्ताह हो गए। अभी तक मुझे कोई काम नहीं मिला है। वह बोला, ठीक है, मुझे काम के बारे में कुछ पता चलेगा तो बताऊँगा। दो-एक दिन बाद दोपहर को बच्चों को खिला-पिलाकर मैं उनके साथ सो रही थी कि सुनील आया और बोला, क्यों, काम मिला? मैंने कहा, नहीं, अभी तक कुछ नहीं मिला। वह बोला, तो चलो मेरे साथ। मैंने पूछा, कहाँ? तो वह बोला, काम करना है तो मैं तुम्हें लिए चलता हूँ, बाकी बातें तुम स्वयं वहाँ कर लेना। उसकी बात सुन मैं फ़ौरन उसके साथ निकल पड़ी। वहाँ पहुँचकर सुनील ने गेट के बाहर लगी बेल बजाई तो उस घर के साहब बाहर आए। सुनील ने उनसे कहा, सर, आपने कहा था न? मैं इसे ले आया हूँ। उन्होंने मुझसे पूछा, तुम बंगाली हो? मैं बोली, हाँ। इसके बाद काम के बारे में बातें हुईं उन्होंने कहा, देखो, यहाँ जो औरत काम करती है उसे मैं आठ सौ रुपये देता हूँ। तुम्हारे पैसों के बारे में मैं तुम्हारा काम देखकर बताऊँगा। मैं बोली, ठीक है। यहाँ कितने बजे आने से ठीक होगा? उन्होंने कहा, तुम जितनी जल्दी आ सको क्योंकि मैं बहुत सबेरे उठता हूँ। मैं बोली, मुझे तो जाकर बच्चों के लिए खाना-वाना बनाना होगा। मैं छह-सात बजे तक आऊँगी। इतना कहकर मैं चलने लगी तो मुझे लगा वह पैसों के बारे में कुछ कहना चाहते हैं। सुनील जाने को हुआ तो उससे मैंने थोड़ा रुक जाने को कहा। वह बोला, तुम बात करके आ जाना, मैं चलता हूँ। मैंने कहा, बस थोड़ा सा रुक जाओ। लेकिन साहब ने फिर पैसों की बात नहीं उठाई और सिर्फ़ इतना कहा, कल से तुम काम पर आ जाओ।

अगले दिन मैं काम पर आई तो दूर से ही पैंतीस-चालीस वर्ष की एक विधवा को उसी घर में काम के लिए जाते देखा। साहब बाहर पेड़ों में पानी दे रहे थे। मुझे देखते ही वह भीतर गए और उस औरत से साफ़-साफ़ बातें कर उसी समय उसे काम से हटा दिया। वह औरत भी बंगाली थी। बाहर आते ही उसने मुझे गालियाँ

देना शुरू कर दिया। मैंने कहा, देखो, मैं कुछ नहीं जानती। यदि जानती होती कि यहाँ पहले से ही कोई काम कर रहा है तो मैं नहीं आती। मुझसे कहने से कोई लाभ नहीं। तुम साहब को मेरी तरफ़ से जाकर बता दो कि वह इस तरह काम करने को राज़ी नहीं है। उसने ऐसा कुछ नहीं किया और मुझे बकते-बकते चली गई। साहब आकर मुझे भीतर ले गए और सब समझा-बुझा दिया कि क्या करना होगा क्या नहीं करना होगा। बस उस दिन से मैं अपने मन से खाना-वाना बनाकर, टेबिल पर रखकर घर जाने लगी। मेरा काम देखकर घर में सभी आश्चर्य करते। एक दिन साहब ने पूछा, तुम इतना ढेर सारा काम इतने कम समय में और इतनी अच्छी तरह कैसे कर लेती हो? कहाँ सीखा तुमने यह सब? मैंने कहा, घर के काम में मुझे असुविधा नहीं होती क्योंकि बचपन से अभ्यास है। बचपन से ही मैं बिना मा[1] के रही हूँ। मेरे बाबा भी सब समय घर पर नहीं होते थे। इसी कारण मेरा पढ़ना-लिखना भी नहीं हो सका।

मैं इसी तरह रोज़ सबेरे आती और दोपहर तक सारा काम खत्म कर चली जाती। बीच-बीच में साहब मेरे बारे में इधर-उधर की बातें पूछ लेते। एक दिन उन्होंने मेरे बच्चों की पढ़ाई-लिखाई के बारे में पूछा तो मैंने कहा, मैं तो पढ़ाना चाहती हूँ लेकिन वैसा सुयोग कहाँ है, फिर भी चेष्टा तो करूँगी ही बच्चों के लिए। उन्होंने एक दिन बुलाकर फिर कहा, तुम अपने लड़के और लड़की को लेकर आना। यहाँ एक छोटा-सा स्कूल है। मैं वहाँ बोल दूँगा। तुम रोज़ बच्चों को वहाँ छोड़ देना और घर जाते समय अपने साथ ले जाना। मैं अब बच्चों को साथ लेकर आने लगी। उन्हें स्कूल में छोड़, घर आकर अपने काम में लग जाती। स्कूल से बच्चे जब मेरे पास आते तो साहब कुछ न कुछ उन्हें खाने को देते।

अब मैं सोचने लगी कि मुझे कहीं और भी काम करना चाहिए क्योंकि इतने पैसों में क्या बच्चों को पालूँगी-पोसूँगी और क्या घर का किराया दूँगी! मैंने साहब से कहा कि यदि उन्हें पता चले कि किसी को काम करने वाले की ज़रूरत है तो

---

1. माँ

मुझे बताएँ। उन्होंने कहा कि आस-पास पता कर वह मुझे बताएँगे लेकिन मुझे अब कहीं काम ढूँढ़ने नहीं जाना है। फिर भी मुझे अपना यह घर तो छोड़ना ही होगा, यह सोचकर मैं अपने दादा[1] लोगों के आस-पास ही घर ढूँढ़ने गई।

घर मिल भी गया और उसी दिन पुराना घर छोड़ मैं उसमें चली आई। इस घर का भाड़ा तो पाँच सौ रुपये ही था लेकिन टट्टी-पेशाब के लिए बाहर जाना होता था। मैंने सोचा जब सब इसी तरह रह रहे हैं तो मैं क्यों नहीं रह सकूँगी! वहाँ भी लोग मेरे बारे में सब कुछ जानने की चेष्टा करते और मुझे लेकर तरह-तरह की बातें करते। कोई मुझसे अच्छा व्यवहार करता तो कोई नहीं। कोई मुझे अच्छी सलाह देता तो कोई मुझे देख दबी ज़बान से कुछ कहने लगता। इन सब बातों से मुझे कुछ लेना-देना नहीं था। मैं सबेरे उठकर बच्चों को खिला-पिलाकर रेडी करती और घर में ताला लगाकर उनके साथ निकल पड़ती। मैं एक ही कोठी में काम करते कैसे अपना काम चलाऊँगी और कैसे घर का किराया दूँगी, इस बात को लेकर लोग आपस में खूब बातें करते। मैं स्वयं भी चिंतित थी कि मुझे और दो-एक कोठियों में काम नहीं मिला तो इतने पैसों में गुज़ारा कैसे होगा। मैं रोज़ साहब से पूछती कि किसी ने उन्हें काम के बारे में कुछ बताया क्या। वह मेरा प्रश्न और कोई बात कर टाल देते लेकिन उन्हें देखकर मुझे लगता जैसे वह नहीं चाहते कि मैं कहीं और भी काम करूँ। शायद वह सोचते रहे हों कि मुझसे वह सब होगा नहीं और होगा भी तो उससे बच्चों की पढ़ाई-लिखाई ठीक से नहीं चल पाएगी। शायद इसीलिए उन्होंने एक दिन हठात् मुझसे पूछा, बेबी, महीने में तुम्हारा कितना खर्चा हो जाता है? शरम से मैं कुछ नहीं बोली और उन्होंने भी दुबारा नहीं पूछा।

मुझे सबेरे जल्दी उठकर, बिना कुछ खाए-पिए, काम पर आना पड़ता था। खाना-वाना बनाकर मैं घर जाती और वही सब काम वहाँ जाकर करती। साहब कहते तो कुछ नहीं लेकिन कभी-कभी ऐसा कुछ कर बैठते जिससे मैं जान जाती कि उनके मन में मेरे लिए माया है। सबेरे उनके यहाँ जाने पर कभी देखती कि

1. बड़ा भाई

वह बर्तन पोंछ रहे हैं तो कभी उन्हें झाड़ू लेकर जाले ढूँढ़ते देखती। मैं पूछती कि उन्हें यह सब करने की क्या दरकार[1] है तो वह इधर-उधर का कोई बहाना बनाकर बात को टाल देते। उनके यहाँ काम करने में मुझे बहुत सुख मिलता। वहाँ कोई भी मेरे काम को लेकर कुछ नहीं कहता। कोई यह तक नहीं देखता कि मैं कुछ कर भी रही हूँ या नहीं। मुझे सबेरे देखते ही साहब का चेहरा खिल उठता लेकिन वह बोलते कुछ भी नहीं। वह जिस तरह से मुझे देखते उससे मुझे लगता जैसे सोच रहे हों कि इस बेचारी को किस अपराध के पीछे अपना घर-परिवार छोड़ बच्चों के साथ यहाँ अकेले रहने को बाध्य होना पड़ा! उन्हें तब तक जितना मैं जान सकी थी उससे मुझे लगता कि कहीं मुझे दुख न पहुँचे, इस डर से वह मुझसे इस तरह की कोई बात नहीं करते थे। वह कुछ कहना शुरू करते फिर अचानक चुप हो जाते।

कुछ दिनों बाद एक दिन हठात् उन्होंने पूछा, अच्छा, बेबी यह तो बताओ कि यहाँ से जाकर तुम क्या करती हो? मैंने कहा, मैं जाते ही खाना बनाने में लग जाती हूँ और साथ ही साथ बच्चों को नहलाती-धुलाती हूँ। फिर उन्हें खिला-पिलाकर सुला देती हूँ। तीसरे पहर उनके साथ थोड़ा घूमती-घामती हूँ और शाम को संध्या-पूजाकर उन्हें पढ़ने बिठा देती हूँ। रात में फिर उन्हें खिलाना-पिलाना और सुलाना और सबेरे जल्दी से जल्दी यहाँ के लिए निकल पड़ना। बस यही है मेरे सारे दिन का काम। वह बोले, अच्छा, फिर जो तुम और काम ढूँढ़ रही हो तो उसके लिए तुम्हें समय कहाँ से मिलेगा? मैं बोली, इसी में से निकालना होगा, और नहीं तो क्या! बिना किए और कोई चारा भी तो नहीं! इस पर उन्होंने कहा, देखो, यदि मैं तुम्हारी कुछ मदद कर दूँ तब तो तुम कहीं और काम नहीं करोगी न? उनकी बात सुन मैं सोचने लगी वह मेरा कितना खयाल रखते हैं, कितना मुझे चाहते हैं! उन्होंने फिर पूछा, क्यों क्या हुआ? तुमने कुछ बताया नहीं! क्या सोच रही हो? मैं बस, कुछ भी तो नहीं,

1. *ज़रूरत*

कहकर चुप हो गई। उन्होंने कहा, देखो बेबी, तुम समझो कि मैं तुम्हारा बाप, भाई, मा, बंधु, सब कुछ हूँ। यह कभी मत सोचना कि यहाँ तुम्हारा कोई नहीं है। तुम अपनी सारी बातें मुझे साफ़-साफ़ बता सकती हो, मुझे बिलकुल भी बुरा नहीं लगेगा। थोड़ा रुककर उन्होंने फिर कहा, देखो, मेरे बच्चे मुझे तातुश कहते हैं, तुम भी मुझे वही कहकर बुला सकती हो। उस दिन से मैं उन्हें तातुश कहने लगी। मैं तातुश कहकर उन्हें बुलाती तो वह बहुत खुश होते और कहते, तुम मेरी लड़की जैसी हो। इस घर की लड़की हो। कभी यह मत सोचना कि तुम परायी हो। वहाँ कोई भी मेरे साथ पराये जैसा व्यवहार नहीं करता। तातुश के तीन लड़के थे। उस समय तक मैंने एक ही को देखा था और वह उनका सबसे छोटा लड़का था। उसके मुँह में जैसे ज़बान ही नहीं थी। मैं किचेन में ही काम कर रही होती तब भी चाय बनाने के लिए मुझसे न कह वह स्वयं अपनी चाय बना लेता। उसकी आदत ही थी कम बोलने की। मुझसे तो क्या, वह किसी से भी ज़्यादा बात नहीं करता था। तातुश ने एक दिन बताया कि उनका बड़ा लड़का आ रहा है। उन्होंने कहा, मेरा बड़ा लड़का, माने तुम्हारा बड़ा भाई। तातुश की इस तरह की बातें सुन मुझे बहुत अच्छा लगता। मैं सोचती कि सचमुच ही वह मुझे बहुत चाहते हैं।

दो-एक दिन बाद मैं सबेरे काम कर रही थी तो तातुश ने बुलाकर कहा, बेबी, तुमने क्या घर बदल लिया है? मैंने हाँ कहा तो वह बोले, तुमने घर बदला और मुझे बताया तक नहीं! मुझे चुप देख उन्होंने कहा, यह तुमने ठीक नहीं किया, बेबी। मैंने सोचा, सचमुच ही मुझसे भूल हुई, एक बार बताना तो चाहिए ही था। मेरे न बताने से उन्हें दुख हुआ, यह तो मालूम पड़ गया लेकिन यह समझ में नहीं आया कि उन्हें पता कैसे चला। स्वयं उन्होंने यह कहकर बात साफ़ कर दी कि सुनील ने उन्हें बताया था। मैं अभी सोच ही रही थी कि सुनील को कहाँ से पता चला होगा कि तातुश ने फिर कहा, सुनील तुमसे मिलने तुम्हारे पुराने घर गया था। वहाँ तुम्हें न देख उसने आस-पास के लोगों से पूछा तो पता चला कि तुम कहीं और चली गई हो। तातुश ने आगे बताया कि सबेरे वह दूध लेने गए थे तो वहाँ सुनील मिला था। उन्हें देखकर सुनील ने पूछा था, बेबी क्या अब आपके यहाँ काम नहीं

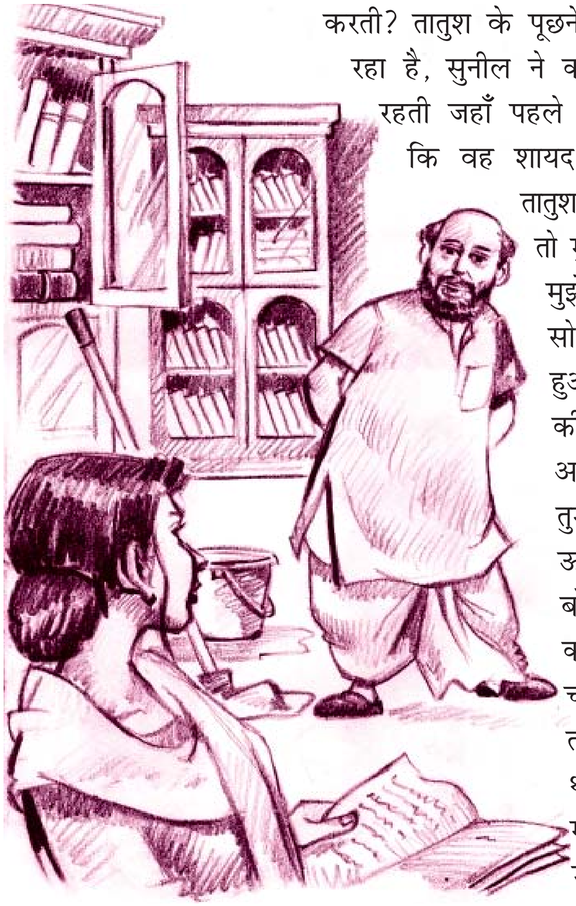

करती? तातुश के पूछने पर कि वह ऐसा क्यों सोच रहा है, सुनील ने कहा था, बेबी अब वहाँ नहीं रहती जहाँ पहले रहती थी इसलिए मैंने सोचा कि वह शायद अब आपके पास नहीं है। तातुश मुझसे बोले, सुनील नहीं बताता तो मुझे कुछ पता ही नहीं चलता! मुझे सुनकर बहुत बुरा लगा। मैंने सोचा, सचमुच मुझसे अन्याय हुआ। वह थोड़ी देर मेरे चेहरे की ओर देखते रहे, फिर पूछा, अभी जब मैंने तुम्हें बुलाया तो तुम क्या कर रही थीं? मैं बोली, ऊपर डस्टिंग कर रही थी। वह बोले, तो जाओ अपना काम करो। मैं डस्टिंग करने ऊपर चली गई। वहाँ एक कमरे में तीन आलमारियाँ किताबों से भरी थीं। उन्हें देखकर हमेशा मेरे मन में यह बात उठती कि उन्हें कौन पढ़ता होगा। उनमें बांग्ला की भी काफ़ी किताबें थीं। कभी-कभी मैं दो-एक किताबें खोलकर भी देखती। एक दिन मैं उसी कमरे में डस्टिंग कर रही थी कि तातुश वहाँ पहुँच गए। उन्होंने देखा कि मैं बांग्ला की कोई किताब उलट-पलट रही हूँ। उस दिन उन्होंने मुझसे कुछ नहीं कहा। अगले दिन जब मैं सबरे काम पर आई और चाय बनाकर उन्हें देने गई तो उन्होंने पूछा, तुम कुछ पढ़ना-लिखना जानती हो? सुनकर मैं मन मसोसकर रह गई और एक

ऊपरी हँसी हँसकर जाने लगी तो उन्होंने फिर पूछा, क्या बिलकुल ही नहीं जानती? मैं बोली, झूठ क्यों कहूँ कि एकदम नहीं जानती लेकिन वह जानना नहीं के बराबर ही है। तब उन्होंने पूछा, फिर भी, कहाँ तक पढ़ी हो? मैं बोली, छठी–सातवीं तक। उतनी पढ़ाई किस काम की! मुझे लगा, मेरी बात सुन तातुश कुछ सोचने लगे। उस दिन उन्होंने फिर कुछ और नहीं कहा।

अगले दिन मैं आई तो मुझे देख वह हँसने लगे। वैसे भी उनके चेहरे पर सब समय हँसी रहती थी, देखकर लगता कि उनके मन में गुस्सा है ही नहीं। बोलते भी वह बहुत आहिस्ता–आहिस्ता थे। उन्हें देख मुझे श्री रामकृष्ण याद आ जाते थे। मैं उनसे बातें करने लगती तो फिर वहाँ से उठने की मेरी इच्छा नहीं होती और एक बार बातें शुरू हुईं नहीं कि वह इधर–उधर की न जाने कितनी बातें मुझे बताने लगते। मैं तातुश के पास खड़ी यही सब सोच रही थी कि हठात् वह बोले, अच्छा, बेबी, तुम्हें किसी लेखक का नाम याद है? मैंने उनकी ओर देख हँसते हुए झट से कहा, हाँ, कई तो हैं, जैसे, रवीन्द्रनाथ ठाकुर, काज़ी नज़रुल इस्लाम, शरत्चंद्र, सत्येंद्र नाथ दत्त, सुकुमार राय। मैंने इन लोगों के नाम लिए तो पता नहीं क्यों, तातुश मेरे सिर पर हाथ रख मुझे आश्चर्य से ऐसे देखने लगे जैसे उन्हें विश्वास नहीं हो रहा हो। कुछ क्षण बाद वह बोले, तुम्हें लिखने–पढ़ने का शौक है? मैंने कहा, शौक होने से भी क्या! लिखना–पढ़ना तो अब होने से रहा। उन्होंने कहा, होगा क्यों नहीं? मुझी को देखो, अभी तक पढ़ता हूँ। तुम्हें क्या पता नहीं मैंने इतनी किताबें क्यों रख छोड़ी हैं? मैं पढ़ सकता हूँ तो तुम क्यों नहीं पढ़ सकतीं? उन्होंने फिर कहा, तुम ज़रा मेरे साथ ऊपर चलो। मुझे ऊपर ले जाकर उन्होंने आलमारी से एक किताब निकाली और कहा, बताओ तो यह क्या लिखा है? मैंने देखकर सोचा, पढ़ तो ठीक ही लूँगी। फिर सोचा, लेकिन गलती हो गई तो? तो क्या, मैंने फिर सोचा, कह दूँगी मुझे पढ़ना–लिखना एकदम नहीं आता। तातुश मेरे मुँह की ओर देखे ही जा रहे थे। उन्होंने कहा, पढ़ो न, कुछ तो पढ़ो! मैंने तब बोल ही दिया, आमार मेये बेला, तसलीमा नासरिन। तातुश बोले, तुम यही सोच रही थीं न कि कहीं गलती तो नहीं हो जाएगी? मैं हँसने लगी। वह बोले, यह किताब तुम ले जाओ। घर पर समय मिले तो पढ़ना।

मैं किताब लेकर घर चली आई और रोज़ उसमें से एक एक-दो दो पेज कर पढ़ने लगी। मैं किताब लेकर पढ़ने बैठती तो आस-पास के लोग देखकर आपस में न जाने क्या बातें करते। मैं उनकी बातें अनसुनी कर देती। किताब पढ़ने में पहले मुझे थोड़ी दिक्कत होती थी लेकिन धीरे-धीरे वह दूर होने लगी। किताब पढ़ना मुझे बहुत अच्छा लगता। कुछ दिनों बाद तातुश ने एक दिन पूछा, तुम जो किताब ले गई थीं उसे ठीक से पढ़ तो रही हो? मैंने हाँ कहा तो वह बोले, मैं तुम्हें एक चीज़ दे रहा हूँ, तुम उसका इस्तेमाल करना। समझना कि वह भी मेरा ही एक काम है। मैंने पूछा, कौन सी चीज़? तातुश ने अपनी लिखने की टेबिल के ड्रार से एक पेन और कॉपी निकाली और बोले, इस कॉपी में तुम लिखना। लिखने को तुम अपनी जीवन-कहानी भी लिख सकती हो। होश सँभालने के बाद से अब तक की जितनी भी बातें तुम्हें याद आएँ सब इस कॉपी में रोज़ थोड़ा-थोड़ा लिखना। पेन और कॉपी हाथ में लिए मैं सोचने लगी कि इसका तो कोई ठिकाना नहीं कि जो लिखूँगी वह कितना गलत या सही होगा। तातुश ने पूछा, क्यों, क्या हुआ? क्या सोचने लगी? मैं चौंक पड़ी। फिर बोली, सोच रही थी कि लिख सकूँगी या नहीं। वह बोले, ज़रूर लिख सकोगी। लिख क्यों नहीं सकोगी! जैसे बने वैसे लिखना।

पेन और कॉपी ले मैं घर गई और उसी दिन से दो-एक पेज रोज़ लिखने लगी। लिखती और वह किताब भी पढ़ती। सबेरे काम पर आती तो तातुश पूछते कि कुछ लिखा या नहीं और यदि मैं हाँ कहती तो वह बहुत खुश होते और कहते, तुम यदि रोज़ लिखोगी तो मैं तुम्हें और भी प्यार करूँगा। किसी-किसी दिन लिखते-पढ़ते इतनी रात हो जाती कि तब तक आस-पास के लोग एक नींद सो भी चुके होते। नींद टूटने पर वे देखते कि मैं जगी हुई हूँ तो सबेरे कोई न कोई पूछ बैठता, बताओ तो, तुम इतना क्या लिखती-पढ़ती रहती हो? मैं कहती, उँह, कुछ भी तो नहीं। मुझे उन लोगों की बातें अच्छी नहीं लगती थीं और फिर वहाँ कुछ अन्य असुविधाएँ भी थीं जिनके कारण मैं अपना वह भाड़े का घर छोड़ना चाहती थी। सब समय मैं यही सोचा करती कि उससे अच्छी जगह कहाँ मिल सकती है। वहाँ पानी की असुविधा थी। वहाँ बाथरूम की असुविधा भी थी। चार घरों के बीच बाथरूम एक ही था।

सबेरे कोई पेशाब के लिए उसमें घुसता तो दूसरा उसमें घुसने के लिए बाहर खड़ा रहता। टट्टी के लिए बाहर जाना पड़ता था लेकिन वहाँ भी चैन से कोई टट्टी नहीं कर सकता था क्योंकि सुअर पीछे से आकर तंग करना शुरू कर देते। लड़के-लड़कियाँ, बड़े-बूढ़े, सभी हाथ में पानी की बोतल ले टट्टी के लिए बाहर जाते। अब वे वहाँ बोतल सँभालें या सुअर भगाएँ! मुझे तो यह देख-सुनकर बहुत खराब लगता। लड़कियों को हाथ में बोतल लिए जाते मैंने इसके पहले कभी नहीं देखा था। तातुश ने मुझसे पहले ही पूछा था, तुम जहाँ रहती हो वहाँ कोई बाथरूम-वाथरूम है कि नहीं? ऊपर एक बाथरूम है, तुम चाहो तो वहीं से नहा-धो-निपटकर जा सकती हो। उस दिन से मैं वहीं वह सब करने के बाद घर जाती। किसी-किसी दिन घर पहुँचने में देर हो जाती तो मकान-मालिक की स्त्री पूछने चली आती कि इतनी देर क्यों हुई। कभी-कभी वह यह भी जानना चाहती कि मैं कहाँ गई थी! उसकी बात सुन मुझे बहुत गुस्सा आता। मैं सोचती यह भी कोई बात हुई कि मैं सारा दिन काम पर रहूँ और लौटूँ तो बेमतलब की बातें सुनने को मिलें! मैं क्या किसी की बाँदी हूँ कि वह सब सुनना ही पड़ेगा! घर का भाड़ा देने में तो मैं नागा नहीं करती! तो फिर मेरे कहीं जाने से इन लोगों को इतना दर्द क्यों होता है! और मैं जाती भी कब-कब थी! समय ही कहाँ था मेरे पास! काम करके लौटती तो लिखने-पढ़ने बैठ जाती। कभी-कभी सविता से ज़रूर मिल आती। वह मेरी एक पुरानी कोठी की सहेली थी। उसके यहाँ से लौटने में कभी देर हो जाती तो सभी मुझे ऐसे देखते जैसे मैं कोई अपराध कर आ रही हूँ! बाज़ार-हाट करने भी जाना होता तो वह बूढ़ी, मकान-मालिक की स्त्री, कहती, कहाँ जाती है रोज़-रोज़? तेरा स्वामी है नहीं, तू तो अकेली ही है! तुझे इतना घूमने-घामने की क्या दरकार?

मैं सोचती, मेरा स्वामी मेरे साथ नहीं है तो क्या मैं कहीं घूम-फिर भी नहीं सकती! और फिर उसका साथ में रहना भी तो न रहने जैसा है! उसके साथ रह कर भी क्या मुझे शांति मिली! उसके होते हुए भी पाड़े[1] के लोगों की क्या-क्या बातें मैंने

1. मोहल्ला

नहीं सुनीं! जब उसी ने उन बातों को लेकर उनसे कभी कुछ नहीं कहा तो मैं आँख-मुँह बंद किए चुप न रह जाती तो क्या करती!

जब मेरे स्वामी के सामने वहाँ के लोगों के मुँह बंद नहीं होते थे तो यहाँ तो बच्चों को लेकर मैं अकेली थी! यहाँ तो वैसी बातें और भी सुननी पड़तीं। मैं काम पर आती-जाती तो आस-पास के लोग एक-दूसरे को बताते कि इस लड़की का स्वामी यहाँ नहीं रहता है, यह अकेली ही भाड़े के घर में बच्चों के साथ रहती है। दूसरे लोग यह सुनकर मुझसे छेड़खानी करना चाहते। वे मुझसे बातें करने की चेष्टा करते और पानी पीने के बहाने मेरे घर आ जाते। मैं अपने लड़के से उन्हें पानी पिलाने को कह कोई बहाना बना बाहर निकल आती। इसी तरह मैं जब बच्चों के साथ कहीं जा रही होती तो लोग ज़बरदस्ती न जाने कितनी तरह की बातें करते, कितनी सीटियाँ मारते, कितने ताने मारते! लेकिन मुझ पर कोई फ़र्क नहीं पड़ता। मैं उनसे बचकर निकल जाती। तातुश के यहाँ जब पहुँचती और वह बताते कि उनके किसी बंधु ने उनसे फिर मेरे पढ़ाई-लिखाई के बारे में पूछा है तो खुशी में मैं वह सब भूल जाती जो रास्ते में मेरे साथ घटता। तातुश के कुछ बंधु कोलकाता और दिल्ली में थे जिन्हें वह मेरे पढ़ने-लिखने के बारे में बताते रहते थे। वे लोग भी चिट्ठियाँ लिखकर या फ़ोन पर तातुश से मेरे संबंध में जब-तब पूछते रहते थे।

एक दिन मैं घर में बैठी अपने बच्चों से बातें कर रही थी कि तभी मकान-मालिक का बड़ा लड़का आकर दरवाज़े पर खड़ा हो गया। मैंने उससे बैठने को कहा। बस, वह बैठा तो उठने का नाम ही न ले! उसने बातें चालू कीं तो लगा वे कभी खत्म नहीं होंगी। उसकी बातें ऐसी थीं कि जवाब देने में मुझे शरम आ रही थी। मैं उससे वहाँ से चले जाने को भी नहीं कह पा रही थी और स्वयं भी बाहर नहीं जा सकती थी क्योंकि वह दरवाज़े पर ऐसे बैठा था कि उसकी बगल से निकला नहीं जा सकता था। मैं समझ रही थी कि वह क्या कहना चाह रहा है। ऐसे में उसकी बातों को मैं अनसुना न करती तो क्या करती! मैंने सोचा अब मेरा भला इसी में है कि इस घर को भी जल्दी से जल्दी छोड़ दूँ। उसकी बातों से यह साफ़ हो गया कि मैं यदि उसके कहने पर चलूँगी तब तो उस घर में रह सकूँगी, नहीं

तो नहीं। मैंने सोचा यह क्या इतना सहज है! घर में कोई मर्द नहीं है तो क्या इसी से मुझे हर किसी की कोई भी बात माननी होगी! मैं कल ही कहीं और घर ढूँढ़ लूँगी।

मैं अपने काम पर जाती रही और साथ ही साथ घर भी ढूँढ़ती रही। एक दिन काम पर से मैं घर लौट रही थी तो देखा कि मेरे बच्चे रोते-रोते दौड़ते चले आ रहे हैं। मेरे पास आ, वे बोले, मम्मी, मम्मी, जल्दी चलो, हमारा घर उन्होंने तोड़ दिया। बच्चों की बात से मैं चौंक पड़ी कि यह क्या हो गया! मैंने कहा, चलो, चलकर देखती हूँ। वहाँ पहुँचकर देखा कि सचमुच ही घर का सारा सामान बाहर बिखरा पड़ा है। वह सब देखकर मैं सिर पकड़कर बैठ गई और सोचने लगी कि बच्चों को लेकर अब मैं कहाँ जाऊँ! इतनी जल्दी दूसरा घर भी कहाँ मिलेगा! बच्चों को अपने पास बिठाए मैं रोने लगी।

उन्होंने सिर्फ़ मेरा ही घर नहीं तोड़ा था, आस-पास जो और घर थे उन्हें भी तोड़ डाला था। लेकिन उन घरों में कोई न कोई मर्द– बड़ा लड़का, स्वामी, ज़रूर था जबकि मेरे यहाँ होते हुए भी कोई नहीं था। इसीलिए मेरा सामान अभी तक उसी तरह बिखरा पड़ा था जबकि दूसरे घरों के लोग अपना सामान एक जगह सहेजकर नया घर खोजने निकल गए थे। हमें छोड़ वहाँ बस कुछ ही लोग और बचे थे। वे इसलिए रुक गए थे क्योंकि मेरे बच्चों से उन्हें मोह था और घर की वैसी हालत में वे उन्हें अकेले नहीं छोड़ना चाहते थे। मैं रो रही थी और मुझे रोते देख मेरे बच्चे भी रोने लगे थे। ऐसे समय में मेरी मदद को सामने आने वाला मेरा अपना कोई नहीं था। पास ही मेरे दो-दो भाई रहते थे। उन्हें मालूम था कि मैं कहाँ रहती हूँ। उन्हें यह भी मालूम था कि वहाँ के सभी घर तोड़ दिए गए हैं। फिर भी वे मेरी खोज-खबर लेने नहीं आए! मैंने सोचा मा होती तो देखती मैं आज किस हाल में हूँ! पता नहीं मेरे भाग्य में अभी और कितना कष्ट, और कितना दुख भोगना लिखा है!

उस दिन फिर कहीं घर खोजना-खाजना नहीं हुआ। रात सात-आठ बजे भोला दा आया। वह मुसलमान था और पास ही में रहता था। उसका घर भी तोड़ दिया

गया था। वह हम लोगों की तरफ़ का रहने वाला था और मेरे भाइयों और मेरे बाबा को भी जानता था। मेरे बच्चों से उसे बहुत लगाव था। भोला दा ने कहा, इस तरह बच्चों के साथ रात में तुम अकेली कैसे रहोगी? इतना कहकर वह वहीं हम लोगों के पास बैठ गया। उस हालत में क्या किसी को नींद आ सकती थी! उस खुली, गंदी जगह में हम सब ने ओस में वह रात किसी तरह काट दी। सबेरे भोला दा ने कहा, तुम जहाँ काम करती हो वहाँ के साहब से बात करके देखो न! मैंने सोचा, ठीक ही तो कह रहा है। तातुश ने तो पहले ही कहा था कि रहने के लिए वह मुझे जगह भी दे सकते हैं, एक बार बात कर देख ही लूँ! मैंने उससे कहा, भोला दा, तुम्हीं एक बार चल कर उनसे बात कर लो न! मेरी तो कहने की हिम्मत नहीं होती। भोला दा बोला, तो फिर चलो। मैं उसे लेकर चली आई। वह बाहर ही खड़ा रहा और मैं भीतर गई। देखा कि तातुश अखबार पढ़ रहे हैं। मुझे देखते ही वह बोले, क्या बात है, बेबी? रोज़ तो तुम ऐसी नहीं दिखतीं! तुम्हारा मुँह ऐसा सूखा-सूखा सा क्यों है? मैंने उन्हें सारी बातें बता दीं कि कैसे हमलोगों के घर बुलडोज़र से तोड़ डाले गए और कैसे सारी रात मुझे बच्चों के साथ बाहर ओस में पड़े रहना पड़ा। मैंने उनसे कहा, मेरे साथ मेरी जान-पहचान का एक आदमी आया है, आपसे बातें करना चाहता है। मेरी बात सुन तातुश फ़ौरन बाहर गए और भोला दा से बातें कर मेरे पास आए और बोले, तो तुम रात को ही क्यों नहीं चली आईं? बच्चों को लेकर रात भर बाहर क्यों रहीं? तुम्हें रात ही में चले आना था। खैर, अब बताओ कब आ रही हो? मैंने कहा, आप जब कहेंगे। तातुश बोले, अभी आ सकोगी? मैं राज़ी हो गई और घर जा एक रिक्शे में अपना सामान लाद बच्चों के साथ आ गई। रास्ते में मैं सोच रही थी कि तातुश तो एक ही बार कहने पर तैयार हो गए! अब आगे पता नहीं क्या होगा।

तातुश ने छत पर एक कमरा मेरे लिए खाली कर दिया। उस कमरे में अपना सारा सामान जमा मैं खाना बनाने की तैयारी करने लगी। तातुश ने ऊपर आकर देखा तो हँसते हुए बोले, तुम आज खाना न भी बनातीं तो चल जाता। नीचे तो काफ़ी

खाना रखा ही है! मैंने कहा, तो क्या हुआ! रखा रहे, दादा लोग खाएँगे। तातुश बोले, रात को एक बार नीचे एक गरम-गरम रोटी खिला सकोगी? अभी तक दोनों समय रोटी बनाने वाला कोई नहीं था। तुम जो खाना बना जाती थीं उसी को रात में भी खाना पड़ता था। अब तो तुम यहीं आ गई हो तो दोनों समय गरम-गरम खाना खिला सकोगी।

इसके बाद से मैं खाना-वाना और अन्य सभी काम अपनी मर्ज़ी से करने लगी। किसी को कुछ भी कहने की ज़रूरत नहीं होती। तातुश मुझे काम करते देखते तो कभी-कभी कहते, बेबी, तुम इतना काम कैसे कर पाती हो! सारा दिन काम करती रहती हो! थोड़ा आकर मेरे पास बैठो। मैं बैठ जाती तो पूछते, बच्चों ने कुछ नाश्ता-वास्ता किया कि नहीं? तुमने कुछ खाया-वाया? जाओ, ऊपर जाकर बच्चों को खिलाओ, फिर आकर अपना नाश्ता करना। जाओ, जल्दी जाओ। इतनी देर हो गई और अभी तक उन्हें कुछ दिया नहीं! वह फिर कहते, यहाँ से थोड़ा दूध ले जाकर उन्हें दे दो। यहाँ आने के बाद से मेरे बच्चों को रोज़ आधा लीटर दूध मिलने लगा था।

तातुश ने एक दिन कहा, देखो बेबी, इस घर में पहले भी कई औरतें काम कर चुकी हैं लेकिन तुम जैसी कोई लड़की अभी तक मुझे नहीं मिली। वह फिर बोले, देखो, तुम यह कभी मत सोचना कि तुम यहाँ बस काम पर लगी एक लड़की हो, या यह घर किसी और का है। इसे तुम अपना ही समझना। मेरी कोई लड़की नहीं, है, मैं तुम्हें अपनी लड़की जैसा मानता हूँ। मैंने सोचा, भला यह भी कोई कहने की बात है! यह तो मैं ही जानती हूँ कि यहाँ आकर मैं कितनी सुखी हूँ। सभी हमेशा मेरा खयाल रखते। कभी तबीयत खराब होती तो तातुश चिंता में पड़ जाते और मेरे कुछ काम स्वयं करने लग पड़ते। मुझे ज़बरदस्ती पड़ोस के डॉक्टर के पास भेज देते। डॉक्टर मेरी जाँच कर दवा लिख देता और मैं उसकी पर्ची लाकर तातुश को दे देती। वह जल्दी से जाकर मेरे लिए दवा ले आते। दवा सिर्फ़ लाते ही नहीं बल्कि जिस समय जो दवा खानी है उसे निकालकर दे भी देते और मेरे आना-कानी करने

पर जबरन खिला देते। मेरे बच्चे बीमार पड़ते तब भी वह फ़ौरन उनके लिए दवा ला देते। घर में काम करने वालों को इतनी अच्छी तरह रखे जाते मैंने कहीं नहीं देखा था। उनके यहाँ मुझे किसी चीज़ की कमी नहीं थी। तेल-साबुन, खाना-पीना, कपड़े-वपड़े, किसी भी चीज़ का अभाव वे लोग मुझे नहीं होने देते। मैं सोचती कि इतने घरों में मैं काम कर चुकी लेकिन इस घर के लोगों जैसा व्यवहार कहीं नहीं देखा। ऐसा लगता जैसे इस घर की सब कुछ मैं ही हूँ। पता नहीं इतना अच्छा घर, इतने अच्छे लोग फिर मुझे मिलेंगे या नहीं!

इस घर में मुझे सुख ही सुख था फिर भी कभी-कभी मेरा मन उदास हो उठता। दो मास से मुझे अपने बड़े लड़के की कोई खबर नहीं मिली थी। तातुश शायद यह समझते थे। एक दिन हठात् उन्होंने पूछा, बेबी, तुम्हारा बड़ा लड़का कहाँ रहता है? तुम कभी जाकर उसे मिलती क्यों नहीं? एक बार, दो बार, तीन बार—वह पूछे ही जा रहे थे और मैं कोई जवाब नहीं दे पा रही थी। कुछ देर बाद मुँह नीचा किए मैं बोली, मुझे तो पता ही नहीं कि वह कहाँ रहता है! तातुश चौंककर बोले, यह क्या बेबी, तुम्हें पता नहीं तुम्हारा लड़का कहाँ रहता है? मैंने कहा, उसे जो लोग ले गए थे वे मेरे घर के पास ही रहते थे। मैंने उनसे पूछा था। उन्होंने यह तो बताया था कि वह किस जगह रहता है लेकिन उन्हें उसके घर का नंबर ठीक-ठाक मालूम नहीं था। उन्होंने जो-जो नंबर बताए थे वहाँ मैं गई थी, एक बार नहीं, कई बार, लेकिन हर बार घूम-फिरकर लौट आई। बस इतना भर सुना है कि उस घर के मालिक की यहीं कहीं दवा की दुकान है। मैंने दो-एक लोगों से पूछा भी लेकिन किसी को ठीक से पता नहीं। तातुश चिंतित होकर बोले, यहाँ तो दवा की बहुत सी दुकानें हैं! उस दिन उन्होंने और कुछ नहीं कहा। अगले दिन सबेरे मुझे बुलाकर उन्होंने कहा, वे लोग जब तुम्हारे लड़के को ले जा रहे थे तो उसे छोड़ने से पहले उनसे तुम्हें सब कुछ अच्छी तरह जान-समझ लेना चाहिए था न? तुम्हें पता है ऐसे में न जाने क्या हो सकता है? उनकी बात सुनकर मैं चुप रही आई। कुछ ही क्षण बाद वह बिना मुझसे कुछ कहे बाहर चले गए और तीनेक घंटे बाद लौटे। आते ही वह

फ़ोन करने लगे। मैं किचेन में खाना बना रही थी। मैंने सुना, वह किसी से बातें कर रहे हैं और साथ-साथ मुझे बुला रहे हैं, बेबी, बेबी, सुनो! मैंने सोचा वह इस तरह मुझे क्यों बुला रहे हैं! मैं जल्दी से उनके पास जाकर खड़ी हो गई। वह फ़ोन पर बात किए ही जा रहे थे। बातें करते-करते वह मुझसे बोले, लो, बात करो। मैंने पूछा, कौन है? किसके साथ बात करूँ? वह बोले, बात करो न! देखो कौन है! मैंने फ़ोन कान से लगाया। पता नहीं कौन हलो-हलो किए जा रहा था। मैं उसकी आवाज़ पहचान नहीं पा रही थी। कान पर से फ़ोन हटा मैंने तातुश से पूछा, कौन बात कर रहा है? वह बोले, अरे, तुम अपने लड़के को ही नहीं पहचान रही हो? मैं चौंककर बोली, ऐं मेरा बाबू! मैंने फिर फ़ोन कान से लगाकर कहा, बेटा, बेटा, मैं तेरी मा बोल रही हूँ। वह बोला, मा, मा कौन? बेबी? मैं बोली, हाँ, बेटा, मैं तेरी मा। बेटा तू कैसा है? वह बोला, मा, मा, मैं बिलकुल ठीक हूँ, मा। मैं यहाँ अच्छी तरह हूँ। उसकी बातों से मुझे लगा मेरा लड़का अब बड़ा हो रहा है। उसकी आवाज़ भी बदल गई थी। दो-एक मास में ही वह कितना बदल गया था! उसे देखने की मेरी बहुत इच्छा होने लगी। तातुश भी समझ गए। उन्होंने पूछा, लड़के से मिलने जाओगी? मैं बोली, हाँ, देख लेती तो और भी अच्छा लगता। वह बोले, तो बताओ कब जाओगी? मैंने कहा, आप जब ले जाएँगे।

कुछ दिन बाद अपने लड़के से एक दिन मिलने गई तो देखा वह बाहर पौधों में पानी दे रहा है। मुझे नहीं लगा कि वह वहाँ ठीक से है। मैंने सोचा, इन लोगों की यह वयस[1] क्या काम करने की है! लेकिन मैं कर भी क्या सकती थी! मेरे लड़के ने जल्दी-जल्दी पास आकर मुझे प्रणाम किया। अपने भाई-बहन को देखकर वह बहुत खुश हुआ। उसके पास से मैं जब चलने लगी तो वह उदास हो गया। मैंने तब सोचा, उसे अब उस घर में नहीं रखूँगी, जैसे भी हो, उसे अपने पास ही रखूँगी। तातुश शायद यह सब समझते थे इसीलिए बीच-बीच में मुझसे उसे फ़ोन कर हाल-चाल जानने के लिए कहते रहते थे। मैं उसे फ़ोन करती तो वह सिर्फ़ यह जानना चाहता कि मैं कहाँ रहती हूँ, घर का नंबर क्या है। मैं यह सोचकर बात

1. *उम्र, अवस्था*

टाल जाती कि कहीं वह बिना किसी को बताए मेरे पास आ गया तो तातुश क्या सोचेंगे! वह बातों-बातों में कहते भी थे कि उसकी वयस का लड़का उन्होंने कभी नहीं रखा। उनकी यह बात मुझे कुछ दुखी ही करती और मैं सोचती कि इसका मतलब क्या यह है कि उन्हें मेरे लड़के पर विश्वास नहीं है! वह कभी यह क्यों नहीं कहते कि अपने लड़के को कुछ दिनों के लिए ले आओ! वह मुझे और मेरे बाकी दोनों बच्चों को इतना चाहते हैं तो फिर मेरा बड़ा लड़का ही क्यों उन्हें भारी पड़ता है! मैं कुछ समझ नहीं पाती लेकिन कहती भी कुछ नहीं।

होते-होते एक दिन तातुश ने स्वयं ही कहा, तुम अपने बड़े लड़के को काली पूजा पर कुछ दिनों के लिए ले आना। सुनकर मैं बहुत खुश हुई। वह फिर बोले, उसके लिए यहीं कहीं काम देखो जिससे वह रोज़ तुमसे मिल-जुल सके लेकिन, बेबी, जानती हो, बच्चों से काम कराना गैरकानूनी है! उसे वहाँ से छुड़ा लाना चाहिए। उसके लिए ऐसी किसी जगह काम देखो जहाँ रहते-रहते वह कोई और काम या कुछ लिखना-पढ़ना भी सीख सके। ऐसा ही कुछ हमें करना होगा लेकिन तीन बच्चों को लेकर क्या यहाँ रहना हो सकेगा? मुझे तो नहीं लगता। मैंने कहा, आपने तो कहा था कि मैं यहाँ काम करते-करते कहीं और भी दो-एक घंटे का काम पकड़ सकती हूँ? तो मैं वैसा ही क्यों न करूँ? तातुश बोले, उससे क्या होगा, बेबी! एक जगह से काम करके आओगी और आकर फिर यहाँ खटना होगा! ऐसे में तुम्हारा स्वास्थ्य कहाँ तक ठीक रहेगा? इतनी भाग-दौड़ करना ठीक नहीं, और फिर उसकी ज़रूरत भी क्या है! अभी तो यह सब जैसा चल रहा है वैसा ही चलाओ।

तातुश की बातें सुन मुझे बहुत माया होती। मैं सोचती इस तरह से तो कभी मेरे बाबा-मा ने भी मुझे नहीं समझाया। लगता है पिछले जीवन में वह सचमुच मेरे बाबा ही थे, नहीं तो मेरे अच्छे-बुरे की इतनी चिंता क्यों करते! थोड़ी देर बाद तातुश ने फिर कहा, तुम्हें मैंने लिखने-पढ़ने का जो काम दिया है तुम वही करती रहो। तुम जितना समय यहाँ-वहाँ के काम में लगाओगी उतना लिखने-पढ़ने में लगाओ। तुम देखोगी एक दिन वही तुम्हारे काम आएगा। और कुछ करने की क्या ज़रूरत? इसी

से काम चलाओ न, बेबी! और फिर यह भी तो सोचो कि तुम्हारे लिखने को लेकर मेरे बंधु तुम्हारा कितना उत्साह बढ़ा रहे हैं! हमेशा कहते रहते हैं कि लिखती जाओ, लिखना बंद मत करना! उन्हें मालूम पड़ेगा कि तुम वह न कर, बाहर जा-जा कर दूसरे काम कर रही हो तो वे मुझे ही तो दोष देंगे!

कुछ दिन बाद तातुश ने एक दिन मुझे बुलाया और कहा, बेबी, तुम अपने लड़के को वहाँ से ले आओ। मुझे उसका वहाँ काम करना बिलकुल अच्छा नहीं लगता। वह इसी तरह दूसरों के घर काम करता रहेगा तो उसका जीवन बरबाद हो जाएगा। यह ठीक नहीं। तातुश ने आगे कहा, मैं एक शिक्षक हूँ और मैं नहीं चाहूँगा बेबी, कि एक बच्चे का जीवन इस तरह नष्ट हो जाए। बेबी, तुम आज ही जाकर उसे ले आओ।

मैं उसी दिन जाकर अपने लड़के को ले आई। तातुश उसके लिए कोई अच्छी जगह ढूँढ़ने लगे, कोई ऐसी जगह, जहाँ रहकर वह घर का काम करते-करते कोई और हुनर या लिखना-पढ़ना भी सीख सके। ऐसा घर लेकिन मुश्किल ही से मिलता है। मेरे पास अब मेरे तीनों बच्चे थे फिर भी मैं खुश नहीं थी। मैं सोचती हम लोगों को खिला-पहना तो वह रहे ही हैं, और कितना करेंगे हमारे लिए! मुझे सचमुच बहुत बुरा लगता। मैंने तय किया कि जब तक मेरा बड़ा लड़का मेरे पास है तब तक मैं थोड़ा हिसाब से चलूँगी, जितना खाना पहले बनाती थी उतना ही अब भी बनाऊँगी। तातुश समझ गए थे कि खाने-पीने को लेकर मैं कुछ उलझन में हूँ। वह मुझे अपने सामने ही खाने को कहने लगे। कभी-कभी वह स्वयं प्लेट में खाना निकाल मुझे देते और उसी समय खा लेने को कहते। उन लोगों का ऐसा स्नेह देख कभी-कभी मैं सोचने लगती की मेरा इतना सुख अभी तक कहाँ था। मैंने इतने घरों में काम किया लेकिन इस घर जैसे लोग कहीं नहीं देखे। इसके पहले जहाँ भी मैं रही, वहाँ काम के लिए मुझे महीना मिलता था। यहाँ वैसा कुछ नहीं था। तातुश कहते, बेबी, मैं यह समझकर तुम्हें पैसे नहीं देता कि महीना दे रहा हूँ। तुम यह कभी मत सोचना कि मैं तुम्हें उस हिसाब से पैसे देता हूँ। तुम बस यही समझो कि तुम्हें जेब खर्च दे रहा हूँ।

मेरा जेब-खर्च तब थोड़ा बढ़ गया जब तातुश के छोटे लड़के अर्जुन दा के दो बंधु भी वहीं रहने लगे। अर्जुन दा के वे बंधु भी बहुत अच्छे थे। वे भी मुझे चाहते थे। मेरे बच्चों से भी बुला-बुलाकर वे बातें करते। उनमें एक का नाम सुखदीप था और एक का, रमण। अर्जुन दा से मुझे वे ही ज़्यादा अच्छे लगते और क्यों न लगते! उन्हें चाय, पानी या खाने के लिए कुछ चाहिए तो फट-से मुझसे कहते जबकि अर्जुन दा ऐसा कि किसी चीज़ की दरकार होने पर भी कुछ नहीं कहता! बस बिस्तर में लेटा रहता! मैं स्वयं उसके पास जाकर पूछती, अर्जुन दा, कुछ ला दूँ, चाय, पानी, खाने को कुछ? वह सिर्फ़ सिर हिलाकर कभी हाँ करता तो कभी ना! उसके बंधु ऐसे नहीं थे। वे मुझे अपने जैसा मानते थे और मैं भी उन्हें अपना ही समझती थी। उन दोनों में भी सुखदीप दा कम बातचीत करने वाला था। मुझे लगता वह शरमाता है। रमण दा दूसरी तरह का था। वह इस घर को बिलकुल अपना समझकर रहता था। वह मुझे काफ़ी कुछ सिखाता भी। खाने की कई चीज़ें बनाना मैंने उससे सीखा। वह मुझसे मेरे बच्चों के बारे में भी बातें करता। वह कहता, देखो, अभी वे छोटे हैं, अभी उनका शैतानी करने का समय है। तुम्हें थोड़ा सावधान रहना होगा, उनकी पढ़ाई-लिखाई पर नज़र रखनी होगी। उन्हें सब समय खेलने मत देना, नहीं तो उनका पढ़ना-लिखना चौपट हो जाएगा। रमण दा पहले सोचता था कि मेरे कोई लड़की नहीं है, तीनों बच्चे लड़के हैं! मेरी लड़की का खेलना-कूदना धीरे-धीरे कुछ दूसरी तरह का होता जा रहा था और कभी-कभी वह लड़कियों के कपड़े भी पहनने लगी थी। रमण दा की भूल उस दिन दूर हुई जब उसने मेरी लड़की को एक गुड़िया लिए खेलते देखा। उसने तातुश से पूछा, बेबी का यह लड़का है या लड़की? इसके हाथ में तो गुड़िया है! तातुश बोले, क्यों, तुम्हें मालूम नहीं? यह तो बेबी की लड़की है! रमण दा ने तब हँसकर कहा, तभी तो! और मैं तो समझ बैठा था कि यह भी लड़का ही है!

रमण दा और सुखदीप दा के आने से घर में थोड़ी चहल-पहल बढ़ी थी लेकिन कुछ ही समय के लिए, क्योंकि जल्दी ही उन दोनों ने काम पर जाना शुरू कर दिया। इस बीच मेरा बड़ा लड़का भी मेरे पास से चला गया क्योंकि उसे एक ऐसे

घर में तातुश ने काम दिला दिया था जहाँ साहब लोगों ने उसे पढ़ाने का भरोसा दिलाया था। मेरा छोटा लड़का और लड़की भी पढ़कर देर से घर लौटते क्योंकि अब वे बड़े सरकारी स्कूल में जाने लगे थे। अर्जुन दा, रमण दा और सुखदीप दा काम पर से लौटकर फ़ौरन सोने चले जाते। तातुश ने एक दिन मुझसे कहा, तुम बच्चों को लेकर रोज़ पार्क में थोड़ा घूम आ सकती हो। बच्चे वहाँ खेलेंगे और तुम्हारा मन भी बहलेगा। उनकी बात मान मैं रोज़ शाम को बच्चों के साथ वहाँ जाने लगी। पार्क में बहुत सी बंगाली औरतें आती थीं। वे वहाँ उन घरों के बच्चों को घुमाने लाती थीं जहाँ वे काम करती थीं। उनमें से कई मुझे देख मेरे पास आतीं और कुछ इस तरह की बातें पूछतीं, तुम बंगाली हो?, तुम्हारा घर कहाँ है?, तुम यहाँ अकेली रहती हो?, तुम्हारा स्वामी कहाँ रहता है?, वह तुम्हारे साथ नहीं रहता? वहाँ कई जवान लड़के भी आते और उनमें बंगाली भी होते। वे भी मुझसे बातचीत करना चाहते और मौका न मिलता तो मेरे बच्चों को बुलाकर उनसे बातें करते। कोई यदि स्वयं आए और मुझसे बात करना चाहे तो उससे बात न करना कैसे संभव है! फिर भी ऐसे लोगों से मैं अधिक बातें नहीं करती और न ही अपने बारे में कुछ बताती क्योंकि बात करने के पीछे उनका आशय क्या है, यह मैं समझ जाती। तातुश ने भी मुझसे कह रखा था कि जब भी कभी मैं बाहर घूमने निकलूँ तो अनजान लोगों से ज़्यादा बातें न करूँ। तातुश ने ठीक ही कहा था। मैं भी वैसा ही सोचती थी और देखती भी कि लोग बातों-बातों में ऐसी-ऐसी बातें पूछने लगते जिनके जवाब देने की मेरी एकदम इच्छा नहीं होती। बीती-पुरानी बातें फिर से मन में लाना मुझे अच्छा नहीं लगता। यह सब देख-सुनकर अब मेरी बाहर निकलने की ही इच्छा नहीं होती लेकिन बच्चों की खातिर जाना ही पड़ता।

एक दिन पार्क में मैंने एक लड़की को एक बच्ची के साथ देखा। उसे मैं पिछले कुछ दिनों से देख रही थी। उसके साथ वहाँ कोई बातचीत नहीं करता था। वह बच्ची को लेकर आती और उसी के साथ खेल-खालकर चली जाती। वह पार्क में आती तो कुछेक लड़के उसे देखकर आपस में हँसी-मज़ाक करते। वह किसी की ओर देखती तक नहीं। वह देखने में नेपालियों जैसी थी लेकिन उस बच्ची से

वह बांग्ला में बातें करती थी जिससे मुझे लगता कि वह बंगाली हो सकती है। उसकी वयस बीस-बाइस की रही होगी और साफ़ मालूम देता था कि उसका ब्याह नहीं हुआ है। उसे देखकर मुझे बहुत माया होती। मैं सोचती कि इतनी बड़ी लड़की को काम के लिए अकेले इतनी दूर क्यों आना पड़ा होगा! मैंने उसे आवाज़ देकर बुलाया तो वह खुशी-खुशी मेरे पास आकर खड़ी हो गई। मैंने उसका हाथ पकड़ उसे अपने पास बिठा लिया और पूछा, तुम क्या बंगाली हो? उसने हाँ कहा और फिर नाम पूछने पर उसने अपना नाम सुनीति बताया। उस दिन से उससे मेरा अच्छा मेल-जोल हो गया और हम एक-दूसरे से रोज़ पार्क में मिलने लगे। किसी दिन न मिल पाने से हम दोनों उदास हो जाते। सुनीति ने बचपन में ही अपने मा-बाबा को खो दिया था। जिस दिन उसका जन्म हुआ था उसी दिन उसकी मा नहीं रही थी और जब वह एक वर्ष की हुई तो उसके बाबा की मृत्यु हो गई थी। उसे उसके मामा और दीदीमा[1] ने पाल-पोसकर बड़ा किया था। बचपन में मा के न रहने से कितना कष्ट होता है वह मैं जानती हूँ! सुनीति जिस दिन अपने घर चली गई उसके एक दिन पहले पार्क में मिली थी और तब तक यह मालूम नहीं था कि वह अगले ही दिन चली जाएगी। उसने मुझसे कहा था, तुम कल अपना पता लिखकर ले आना और मैं भी अपना पता तुम्हें दे दूँगी। मैं अगले दिन अपना पता लेकर पार्क गई लेकिन वह नहीं आई। वह चली गई है, यह बात उस समय भी मेरे मन में नहीं आई थी। उसके अगले दिन भी मैंने उसे नहीं देखा। दो दिन बाद देखा कि जिस बच्ची को लेकर वह आया करती थी वह बच्ची अपनी मा के साथ आई है। तब मुझे लगा कि वह चली गई है। मैंने सोचा उसे शायद मुझसे मिलने का मौका नहीं मिला। वह कर भी क्या सकती थी! जिनके यहाँ रहती थी उन्हीं के कहने पर तो उसे चलना था।

सुनीति के न रहने से पार्क में अब मेरा मन नहीं लगता। मैंने वहाँ जाना छोड़ दिया। जितना समय मैं वहाँ बिताती थी उतना अब मैं लिखने-पढ़ने में बिताने लगी।

---

1. नानी

अब तक जितना मैं लिख चुकी थी उसे तातुश ने फ़ोटो–कॉपी करा के अपने एक बंधु के पास कोलकाता भेज दिया था। तातुश हठात् एक दिन मुझसे बोले, बेबी, तुम्हारी चिट्ठी आई है। मैं अवाक् हो उनकी ओर देखती रही और फिर बोली, मेरी चिट्ठी! मुझे चिट्ठी भेजने वाला तो कोई नहीं! उन्होंने बताया कि चिट्ठी कोलकाता से उनके एक बंधु ने भेजी है। मैंने कहा, सुनाइए न, देखूँ क्या लिखा है उन्होंने! तातुश ने मुझसे बैठ जाने को कहा और फिर चिट्ठी पढ़कर सुनाने लगे, प्रिय बेबी, मैं बता नहीं सकता तुम्हारी डायरी पढ़कर मुझे कितना अच्छा लगा! मैं जानना चाहता हूँ कि इतना अच्छा लिखना तुमने कैसे सीखा। तुम्हारा लेखन उत्कृष्ट है। तुम्हारे तातुश ने सचमुच ही एक हीरा खोज निकाला है! मैं बहुत लज्जित हूँ कि तुम्हें बांग्ला में नहीं लिख सकता। मैं बांग्ला पढ़ सकता हूँ, लिख नहीं सकता। मैं तुम्हारे तातुश से एक वर्ष बड़ा हूँ। इस वयस में भी तुम्हें चिट्ठी लिखने के लिए बांग्ला लिपि सीखने की इच्छा होती है पर वह अब संभव नहीं। तुम कुछ किताबें पढ़ो और तातुश के पास से बांग्ला अभिधान[1] लेकर रोज़ उसे पलटा करो। तुम्हारी कहानी जानने की मेरी बहुत इच्छा होती है। यहाँ मेरे जिन–जिन बंधु–बांधवों ने तुम्हारी डायरी पढ़ी है वे सभी उसे चमत्कार लेखन मानते हैं। मेरे

1. शब्दकोश

एक बंधु ने कहा है कि वह तुम्हारी रचना को किसी पत्रिका में छपाने की व्यवस्था करेंगे लेकिन उसके पहले तुम्हें अपनी कहानी को किसी एक मोड़ तक पहुँचाना होगा। आशा करता हूँ तुम कभी लिखना नहीं छोड़ोगी। यह बात किसी भी दिन मत भूलना कि भगवान ने इस पृथ्वी पर तुम्हें लिखने को भेजा है। आशीर्वाद के साथ यहीं समाप्त करता हूँ। चिट्ठी सुन कर मैं अवाक् रह गई मैंने ऐसा क्या लिखा है जो उन लोगों को इतना अच्छा लगा! उसमें अच्छा लगने की तो कोई बात नहीं! फिर मेरी लिखावट भी खराब है और लिखने में भूलें इतनी कि उसका कोई ठिकाना नहीं! फिर भी उन्हें अच्छा लगा तो क्यों! मेरी कुछ समझ में नहीं आया। मैंने तातुश से पूछा कि मैंने जो लिखा है वह उन्हें इतना अच्छा क्यों लगा तो तातुश बोले, वह तुम नहीं समझोगी। मैंने कहा, मैं सचमुच ही कुछ नहीं समझती। भगवान ने समझने की क्षमता ही नहीं दी मुझे, लेकिन मै समझना चाहती हूँ! तातुश ने कहा, तुम्हें इन सब बातों को लेकर अभी माथा-पच्ची करने की ज़रूरत नहीं है। तुम अपना काम किए जाओ। बस, लिखो और पढ़ो। उसी से सब कुछ अपने आप ही तुम्हारे दिमाग में घुस जाएगा।

तातुश की बात मैं अनसुनी न करती तो क्या करती! जैसे मुझे घर में करने को कुछ और था ही नहीं! घर में अर्जुन दा, रमण दा और सुखदीप दा तो थे ही, उनके बंधु समित दा, रजत दा, राहुल दा का भी आना-जाना लगा ही रहता था! वे सब भी तो मुझे चाहते थे और मेरे साथ तातुश जैसा ही व्यवहार करते थे। ऐसे में मैं उन्हें खिलाने-पिलाने की व्यवस्था छोड़ किताब-कॉपी लेकर कैसे बैठ सकती थी! एक दिन भूल से तातुश की बात मान दिन ही में उनसे अपने लिखने-पढ़ने की बातें करने में लग गई तो एक कांड घट गया। रमण दा उस दिन काम पर से लौटा तो उसे बहुत भूख लगी हुई थी। जल्दी-जल्दी हाथ-मुँह धोकर वह खाने बैठ गया। खाने की प्लेट में कोई गंदगी न पड़ जाए या मक्खी-वक्खी न बैठ जाए इसलिए मैंने उसे उलटा कर रख दिया था। भूख के मारे रमण दा ने इसका खयाल नहीं किया और सब सब्ज़ियाँ उस पर ले लीं। उन सब्ज़ियों में एक गाढ़ी तरी वाली सब्ज़ी थी। उसने जैसे ही रोटी लेकर खाना शुरू किया तो देखा कि तरी प्लेट से

नीचे गिरी जा रही है! वह खाना छोड़, अवाक् हो उसे देखने लगा। कुछ क्षण बाद उसकी समझ में आया कि वह उलटी प्लेट में खाना खा रहा है! वह वहीं बैठा, न जाने क्या सोच-सोचकर खूब हँसने लगा। मैंने तातुश से पूछा, रमण दा किसके साथ बातें कर हँस रहा है? तातुश बोले, और कौन है वहाँ? मैंने कहा, और तो कोई है नहीं उस कमरे में! और इतना कहकर मैं वहाँ चली गई और देखा कि रमण दा हँसे ही जा रहा है। मैंने उससे पूछा, क्या हुआ रमण दा? वह कुछ न कह बस हँसता रहा। मैंने फिर पूछा, क्या हुआ, बताओ तो सही? वह हँसते-हँसते बोला, बेबी, देखो मैं कैसे खा रहा हूँ! मैंने देखा तो हँसी के मारे मेरा बुरा हाल हो गया। हँसते-हँसते ही आकर मैंने तातुश को बताया कि ज़ोर की भूख लगी होने से रमण दा ने बिना अपनी प्लेट की ओर देखे उलटी प्लेट में ही खाना ले लिया। वह भी सुनकर हँसने लगे। वह हम लोगों की तरह नहीं हँसते थे। उनकी हँसी उनकी अपनी तरह की थी। धीरे-धीरे उन लोगों का हँसना बंद हो गया लेकिन मेरी हँसी थम नहीं रही थी। यह देखकर तातुश बोले, बेबी, तुम क्या हँसती ही जाओगी! खाली हँसने से ही सब हो जाएगा? मेरे बंधु की चिट्ठी कितने दिनों से आकर पड़ी हुई है, उसका जवाब तुम्हें नहीं देना होगा? मैंने कहा, चिट्ठी! यह चिट्ठी-विट्ठी लिखना मुझसे नहीं होगा। तातुश बोले, क्यों नहीं होगा? तुमसे जैसे बने, वैसे ही लिखो। लिखते-लिखते ही सब ठीक हो जाएगा।

मैं सोच में पड़ गई कभी किसी को चिट्ठी-विट्ठी लिखी नहीं। यदि लिखे भी तो बस जैसे-तैसे दूसरों के लिए कुछ प्रेम-पत्र! कुछ समझ में नहीं आता कैसे लिखूँगी, क्या लिखूँगी। कितना गलत लिखूँगी, कितना सही, इसका भी तो कोई ठिकाना नहीं! मैंने तातुश से पूछा, मैं उन्हें क्या बोलकर लिखूँगी? तातुश बोले, यह तुम्हीं सोचकर देखो। बस इतना ध्यान रखना कि वह मुझसे एक वर्ष बड़े हैं। मैंने कहा, मैं उन्हें जेठू[1] बोलकर लिखूँगी। तातुश बोले, तुम्हारी जैसी मरज़ी। मैंने जेठू बोलकर ही अपनी चिट्ठी लिखी। चिट्ठी लिखने का सिर-पैर मैं जानती नहीं थी फिर

1. पिता के बड़े भाई/ ताऊ

भी जैसे बन पड़ा लिखा। उस चिट्ठी के जवाब में जेठू ने लिखा, प्रिय बेबी, तुम्हारी चिट्ठी कई दिन पहले मिली थी। क्या लिखूँ, सोचते-सोचते इतनी देर हो गई। चार-पाँच दिन हुए मैं यहाँ के किताबों के बाज़ार गया था। वहाँ बांग्ला किताबें देखकर इच्छा हुई थी कि सारा बाज़ार उठाकर तुम्हारे पास भेज दूँ। लोग वहाँ मछली की तरह किताबें खरीद रहे थे और मैं अवाक् हो देख रहा था! तुम्हारी रचना का दूसरा खंड पूरा हो गया, जानकर बहुत खुशी हुई। तुमने यह बिलकुल ठीक लिखा है कि तुम्हारी रचना को लेकर तुम्हारे तातुश और मैं बहुत चिंतित हैं। चिंता का कारण यह है कि तुम्हारी किताब कैसे छपे। आशापूर्णा देवी का पाखिर खाँचा, खाँचार पाखि कैसा लग रहा है? तुम्हें तातुश ने ज़रूर बताया होगा कि आशापूर्णा देवी घर के सारे काम-काज निबटाकर उस समय चोरी-चोरी लिखती थीं जब सब लोग सो जाते थे! उन्होंने केवल बांग्ला ही पढ़ी थी और घर से बाहर भी वह बहुत कम निकली थीं। मैं और तातुश, दोनों ही आशापूर्ण देवी की लिखने-पढ़ने की दुनिया की काफ़ी खबर रखते हैं जबकि हम में उनकी कानी उँगली बराबर भी लिखने की क्षमता नहीं है! तुम दूसरी आशापूर्णा देवी हो सकती हो, यह बात मेरे मन में बार-बार आती है। तीसरा खंड कितना आगे बढ़ा? मेरा प्यार लो-तुम्हारा जेठू।

जेठू इसी तरह मेरा उत्साह बढ़ाते थे। अकेले जेठू ही ऐसा करते हों, यह बात नहीं थी। और भी कई लोग थे। दिल्ली में जेठू और तातुश के एक बंधु रमेश बाबू थे। मैं जो-जो लिखती वह सब तातुश उन्हें फ़ोन पर सुनाते। एक दिन फ़ोन पर बात करने के बाद वह मुझसे बोले, देखो, तुमने यह जो लिखा है वह मेरे बंधु को बहुत-बहुत अच्छा लगा, ऐनि फ्रैंक की डायरी की तरह! मैंने पूछा, यह ऐनि फ्रैंक कौन है? तातुश ने तब मुझे उसके बारे में बताया और एक पत्रिका निकालकर उसमें से उसकी डायरी के कुछ अंश पढ़कर सुनाए। सुनकर उस लड़की से मुझे बहुत माया हुई।

शर्मिला दी भी मेरा उत्साह बढ़ाती थीं। वह मेरी ही वयस की थीं और जेठी की बंधु थीं। वह कोलकाता ही में कहीं पढ़ाती थीं। उनकी चिट्ठियों से मालूम पड़ता कि वह मुझसे कितना स्नेह करती थीं। वैसा स्नेह मुझे और किसी से नहीं मिला। मैं सोचती कि सचमुच इतने दिनों बाद मुझे एक सहेली मिली। मैंने उन्हें तब तक

देखा नहीं था। उनकी चिट्ठियाँ पढ़कर बार-बार इच्छा होती कि उनके साथ बातें करूँ, हँसूँ, खेलूँ, यह करूँ, वह करूँ! उनसे पूछूँ, शर्मिला दी, हम एक-दूसरे से कब मिल सकेंगे? कभी मिल भी सकेंगे या नहीं? मिलने पर मैं तुम्हें धन्यवाद कैसे दूँगी?

एक दिन घर में एक आलमारी की चीज़ें पोंछते समय मैंने वहाँ एक फ़ोटो-ऐलबम देखा। मैं उसे खोलकर तसवीरें देखने लगी। उसमें अर्जुन दा के बंधुओं की तसवीरें थीं। एक तसवीर में जेठू थे, उनकी एक तरफ़ शर्मिला दी और दूसरी तरफ़ अर्जुन दा। एक और तसवीर में जेठू के पास शर्मिला दी और सुखदीप दा बैठे थे। जेठू और शर्मिला दी को तब तक केवल उन्हीं तसवीरों में देखा था, मिली कभी नहीं थी। उन्हें अपनी आँखों से देखने की बहुत इच्छा होती। शर्मिला दी जब मुझे चिट्ठी भेजती तो साथ में मेरे जवाब देने के लिए तरह-तरह की सुंदर आकृतियों में सादे कागज़ काटकर भी रख देतीं। शर्मिला दी लेखिका थीं। उनकी एक किताब छप चुकी थी और पत्रिकाओं में उनकी कहानियाँ छपती रहती थीं। वह मुझे प्यार करती थीं और मेरे बच्चों के हाल-चाल पूछती रहती थीं। कभी-कभी मैं सोचती कि कहाँ उन जैसी पढ़ी-लिखी लड़की और कहाँ मैं! चिट्ठियों में हम जो बातें करते हैं वह शायद मिलने पर न हों। फिर सोचती कि मिलने पर शायद हम दोनों और भी अधिक बातें करें!

मेरा उत्साह बढ़ाने वालों में जेठू के एक बंगाली बंधु, आनंद भी थे। जेठू के घर पर मेरी किताब का पहला खंड पढ़कर उन्होंने मुझे लिखा, आपकी रचना मुझे

अच्छी लगी। स्वयं के जीवन की विभिन्न स्मरणीय घटनाओं को सहज भाव से लेखन के माध्यम से सामने रखना बहुतों के निकट शायद संभव नहीं। अपनी इस सुंदर कोशिश को कभी बंद न करें। अभ्यास और कोशिश से संभव है कि आप हमें कभी कुछ असाधारण दे सकें। नारी-अत्याचार, असुविधा, दुर्दशा, और उनके आर्थिक कष्ट के बारे में भी आप सोचें और लिखने की चेष्टा करें। मेरी शुभकामना आपके साथ है। इस चिट्ठी के साथ आनंद बाबू ने मुझे अपना एक लेख भी भेजा था। उस लेख को पढ़कर मुझे अच्छा लगा था। वह पूरा का पूरा मेरी समझ में आ गया हो, ऐसी बात नहीं थी। मेरे कहने पर तातुश ने वह मुझे समझाया था फिर भी कुछ दिमाग में घुसा और कुछ नहीं घुसा। इतने सारे लोगों के उत्साहित करने, साहस दिलाने के बाद भी मैं सोचती रहती कि कभी कुछ ठीक से लिख भी पाऊँगी या नहीं।

इसी बीच एक दिन मेरे बाबा सबेरे-सबेरे आ पहुँचे। मैं उस समय किचेन में थी। खिड़की से मैंने एक व्यक्ति को साइकिल से उतरते देखा। मैं ठीक से पहचान नहीं पाई। उसने घंटी बजाई तो काफ़ी देर बाद मैं बाहर निकली। मुझे देखकर बाबा ने पूछा, कैसी है, बेटा? मैं बोली, बाबू, आपके शरीर का यह हाल कैसे हो गया? बाबा बोले, कहाँ कुछ भी तो नहीं हुआ! बच्चे कैसे हैं? मैंने कहा, ठीक हैं, सब ठीक हैं, स्कूल गए हैं। मैं तातुश के पास दौड़ी गई और बताया कि मेरे बाबा आए हैं। तातुश बोले, उन्हें घर में बिठाओ। अपने बाबा के लिए कुछ खाना-वाना तैयार करो। बाबा को मैं अपने कमरे में ले गई और पूछा, चाय बनाऊँ? वह बोले, नहीं रहने दो। इतनी गरमी में चाय! मैंने जल्दी से एक गिलास शरबत बनाकर उन्हें दिया। गिलास हाथ में लिए वह बोले, तू भी थोड़ा ले, बेटा। मैंने कहा, नहीं बाबू, मैंने अभी-अभी चाय पी है। मा कैसी है? वह बोले, ठीक है, तुम्हारी बहुत याद करती रहती है। मैंने सोचा, करेगी क्यों नहीं! दो वर्ष जो हुए जा रहे हैं और अभी तक दूरी के कारण मिलना-जुलना नहीं हो सका। अभी दो-एक दिन के लिए वहाँ चली जाऊँ तो शायद वही झगड़े फिर शुरू हो जाएँ! मैं अब और वही सब भोगने को तैयार नहीं। यहाँ आकर इतना तो मैं समझ गई हूँ कि आदमी हो या औरत, सभी अपने पेट की चिंता स्वयं करते हैं और एक

ही जैसा खटते-कमाते हैं। यही समझ पहले आ गई होती तो उसी हिसाब से मैं अपनी व्यवस्था कर लेती और तब शायद मुझे उतना कष्ट नहीं भोगना पड़ता!

बाबा के साथ इधर-उधर की काफ़ी बातें करते-करते मैंने पूछा, कोलकाता की क्या खबर है? मेरा भाई कैसा है? मा कैसी है? बाबा बोले, मा! तेरी मा? तू ने कुछ सुना नहीं लगता है क्यों? बाबा मेरे मुँह की ओर थोड़ी देर देखते रहे। वह शायद सोच रहे थे कि बताने से कहीं यह रोने-धोने न लग पड़े। इसे सच-सच बताना ठीक होगा या नहीं? शायद बता ही देना चाहिए क्योंकि यह तो अभी भी यही सोच रही है कि इसकी मा जीवित है। ऐसे में न बताना तो भूल होगी। बाबा शायद यही सब सोच रहे थे। उन्हें चुप देख मैंने बाबू कहकर उन्हें बुलाया तो वह चौंक गए। मैंने देखा उनकी आँखें भर आई हैं। तब मुझे लगा कि मेरी मा शायद नहीं रही। मेरे मुँह से निकल पड़ा, क्या हुआ, बाबू? मा की तबीयत तो ठीक है? बाबा रुद्ध गले से बोले, तेरी मा! तो छह-सात मास हुए दुनिया छोड़कर चली गई! तेरी मा नहीं है। क्यों! तेरा दादा तो वहाँ गया था, उसने तुझे नहीं बताया? मैं बोली, नहीं तो! मुझे किसी ने नहीं बताया। मैं थोड़ी देर बाबा के सामने सिसक-सिसककर रोती रही। और मैं कर भी क्या सकती थी। एक बार सुना था कि अस्पताल में भर्ती है। मुझे लगता है तभी उसकी मृत्यु हो गई थी। उसके बाद उसकी कोई खबर नहीं मिली। सभी को सारी जानकारी रहती है लेकिन मुझे कोई कुछ नहीं बताता। मेरे दादा, बऊदी, भाई कोई बहुत दूर तो रहते नहीं थे! रिक्शे में दस रुपया भाड़ा लगता। फिर भी कोई एक बार भी मुझे बताने नहीं आया! बीच में मैं कई बार वहाँ गई भी लेकिन तब भी किसी ने कुछ नहीं कहा! मैं हर समय सोचती रहती थी कि जैसे भी हो एक बार मा के पास ज़रूर जाऊँगी। इतने दिन यही सोचती आ रही थी और अब सुनने को मिला मेरी मा हम लोगों को छोड़ चली गई! मुझे पता चला था कि मा जब अस्पताल में भर्ती थी तब मेरे छोटे भाई ने बाबा के पास जाकर उनसे कहा था कि वह उन्हें मा से मिलाने ले जाएगा। बाबा नहीं गए। वह क्यों जाते! उन्हें जाने की दरकार ही क्या थी! उन्हें किस चीज़ का अभाव था। बाबा का जाना उचित होता। मुझे लगता है वह जानते थे कि मा नहीं बचेगी, फिर भी नहीं गए।

मेरे भाई को वैसे ही घूम-फिरकर लौट आना पड़ा। मेरे खयाल से बाबा ने भूल की। अंतिम भेंट की तरह एक बार मा को देख आ सकते थे लकिन नहीं गए। मा का क्रिया-कर्म मेरे भाई को अकेले ही करना पड़ा। दादा लोगों को भी काफ़ी बाद में पता चला और मुझे तो अभी-अभी!

बाबा ने पूछा, तेरा बड़ा लड़का कहाँ रहता है? मैंने बताया कि यहीं पास में है तो वह बोले, चलो थोड़ा देख आऊँ। मैं बाबा को लेकर वहाँ गई। बेल बजाते ही मेरा लड़का बाहर निकल आया और अरे, दादू! कहकर उन्हें प्रणाम किया और बोला, दादू, मेरा बाबू कैसा है? बाबा बोले, तुम्हारा बाबू ठीक है। मैंने साथ चलने को कहा था पर वह नहीं आया, भाई! मेरे लड़के को देखकर बाबा की आँखें भर आई थीं। वह उससे बोले, तुम लोग और भी बड़े होओ, भाई। पहले कैसे परिवेश में थे तुम लोग! अब तुम सबको देखकर बहुत खुशी हुई। मुझसे बाबा ने कहा, तुझे अब कष्ट नहीं होगा, बेटा। तेरा लड़का बड़ा हो रहा है। देखना, एक दिन यही तुझे सुख देगा, बेटा। अभी थोड़ा कष्ट उठा ले, बाद में इसके साथ सुख-शांति से रहेगी। मेरे लड़के से बाबा बोले, दादू भाई, ठीक से रहना और इतना कहकर मेरे साथ लौट आए। बाबा हमारे यहाँ से चलने लगे तो तातुश ने उनसे कहा, आप बेबी की तरफ़ से निश्चिंत होकर जाएँ। बाबा बोले, जब आप जैसे लोगों के पास है तो चिंता की कोई बात नहीं। चिंता करता लेकिन अब नहीं करूँगा क्योंकि मैंने देख लिया कि मेरी लड़की यहाँ खूब अच्छी तरह है।

बाबा चले गए। उन्हें कहीं से पता चल गया था कि मैं कुछ लिख-विख रही हूँ। सुनकर वह बहुत खुश हुए थे। जहाँ पहले वह मेरी कोई खोज-खबर नहीं लेते थे वहाँ अब वह जब-तब फ़ोन पर मेरा हाल-चाल पूछने लगे। वह बार-बार यह भी जानना चाहते कि मेरा लिखना कहाँ तक आगे बढ़ा, खत्म हुआ कि नहीं! वह मुझे अपने यहाँ आने को भी कहते और साथ में यह भी कि यदि मैं रुकना न चाहूँ तो लौट आ सकती हूँ। मेरी जाने की इच्छा नहीं होती।

बाबा के जाने के बाद कई दिन मेरा मन बहुत खराब रहा। मैं पछताती कि मेरी मा मर गई और मैं आँखों से उसे देख तक नहीं पाई! मुझे बाबा के गिरते स्वास्थ्य

को लेकर भी चिंता लगी रहती। इसी बीच जेठू और शर्मिला दी की कई चिट्ठियाँ भी आ पहुँची थीं और उनके जवाब देने की चिंता अलग से लगी रहती। चिट्ठियों के जवाब देने से दोनों खुश होंगे और मेरा मन भी बहल जाएगा, यह सोचकर एक दिन सारी चिट्ठियाँ लेकर मैं बैठ गई। जवाब देने से पहले उन चिट्ठियों को एक बार फिर पढ़ लेना ज़रूरी समझ कर मैंने पहले जेठू की चिट्ठियाँ उठाईं और किसी कहानी की तरह उन्हें पढ़ने लगी... तातुश ने तुम्हें शब्द-कोश की मदद लेने को ठीक ही कहा है। मेरी भी यही राय है। चिट्ठी लिखने में भूलें तो होंगी ही लेकिन क्या इसी से तुम चिट्ठी लिखना बंद कर दोगी? बार-बार जिज्ञासा करना कोई बुरी बात नहीं, जिज्ञासा होने से ही हम लिख पाते हैं। तुम्हारी कहानी क्या इधर सोयी पड़ी है, तुम्हारे तातुश की तरह?... नव-वर्ष में खूब लिखो और मल्लेश्वरी की तरह मोटी-सोटी हो जाओ, यही मेरी कामना है।... तुम्हारा लेखन मुझे बहुत अच्छा लग रहा है और मुझे लगता है कि दूसरों को भी अच्छा लगेगा। मैं अपने बंधु, आनंद के कहने पर उनका यह लेख तुम्हें भेज रहा हूँ।... तुम्हारे लेखन को लेकर तुम्हारे तातुश और तुम्हारे जेठू, दोनों के ही सोचने-विचारने का कोई अंत नहीं। सबसे अधिक खुशी की बात यह है कि पहले की तरह अब तुम्हें लिखने में कष्ट नहीं हो रहा है। आशापूर्णा देवी की कोई नयी किताब पढ़ी क्या?... तुम्हारी लिखावट पहले मुझे काफ़ी कष्ट देती थी। अब कष्ट देने की बात तो दूर, तुम्हारी लिखावट देखकर बहुत खुशी होती है। पढ़ते हुए एक बार भी तुम्हें डाँटने की इच्छा नहीं होती बल्कि बार-बार शाबाश, बहुत अच्छा कहने की इच्छा होती है। भूलों की चिंता करने लगो तो एक लाइन भी लिखी नहीं जा सकती इसलिए उनकी चिंता किए बिना लिखना होगा। बाद में अपना लिखा स्वयं ही सुधार लेना होगा। इसके बाद जिन लोगों का काम ही है लिखना-पढ़ना, उनसे इसे कुछ और सुधरवाने की बारी आएगी। लिखने बैठने से ही लिखा जा सकता है, यह अभिज्ञता तुम्हें निश्चित ही हो गई है। तुम्हारे तातुश ने तुमसे ठीक ही कहा है कि भूल होती है तो हो, फिर भी लिखो। जेठू की जितनी चिट्ठियाँ आतीं उतनी मेरी इच्छा होती कि लिखूँ, और भी लिखूँ।

शर्मिला दी मुझे हिंदी में चिट्ठी लिखती थीं। उनकी चिट्ठियाँ सुनकर मुझे बहुत अच्छा लगता। उनकी चिट्ठियाँ कुछ और ही तरह की होतीं। मैं सोचती कि उनके यहाँ भी तो घर के काम के लिए कोई लड़की रखी गई होगी। क्या उसके साथ भी वह वैसा ही व्यवहार करती होंगी जैसा मेरे साथ! मुझे तो वह किसी के घर काम करने वाली लड़की की तरह नहीं देखतीं और चिट्ठियाँ भी ठीक उसी तरह लिखतीं जैसे अपनी किसी बांधवी को! तातुश उनकी चिट्ठियाँ पढ़कर सुनाते तो अपनी टूटी-फूटी बांग्ला में मैं उन्हें लिख लेती। कभी जब मेरा मन खराब होता तो उनकी यह चिट्ठियाँ मुझे आह्लादित कर देतीं... बेबी, एक बार सोचकर देखो कि अपने बाबा को तुम जैसा समझती हो, वैसे वह क्यों हैं? इसका कारण क्या है! थोड़ा उनकी तरफ़ से भी सोचो जिन्हें तुम माफ़ भले ही न कर सको। बेबी, जो हमें अच्छे नहीं लगते उन्हें भी माफ़ किया जा सकता है और शायद वैसा करना ही भला है।... यदि तुम यहाँ आओ तो हम दोनों खूब सजेंगे और फिर खूब नाचेंगे। तुम्हें सजना अच्छा लगता है कि नहीं? मुझे तो कभी-कभी अच्छा लगता है। तुम मेरे लिए सजना और मैं तुम्हारे लिए सजूँगी।... हम दोनों जब एक दूसरे से मिलेंगे तो जी-भरकर हँसेंगे। यदि हँसने की कोई बात न होगी तब भी हँसेंगे।... बेबी, तुम उस समय क्या अवाक् नहीं रह जातीं जब कोई तुम्हारा लिखा कुछ पढ़कर कहता है कि बहुत अच्छा लिखा है? और तुम क्या कभी यह सोचती हो कि इतनी कठिनाई, इतने कष्ट में बीता तुम्हारा जीवन लिखना शुरू करने के बाद से इतना सुंदर कैसे हो गया?

मुझे यह बात बड़ी मज़ेदार लगती कि शर्मिला दी ने मेरे सजने-धजने के बारे में पूछा क्योंकि सजना-धजना मुझे कभी अच्छा नहीं लगा। मैंने कितनी ही लड़कियों, बहुओं को देखा था जो कहीं घूमने जाने की बात उठी नहीं कि सिंदूर की डिब्बी, पाउडर का डिब्बा, आयना, कंघी और न जाने क्या-क्या लेकर सजने बैठ जातीं। साड़ी पहनतीं तो अपनी किसी सहेली को बुलाकर पूछतीं, ए, देखो तो ठीक से पहनी कि नहीं? अगर सहेली ने उनके मन की बात नहीं कही तो ऐं! ठहरो कहकर साड़ी को फिर दस बार खोलतीं, पहनतीं! कोई-कोई अपने स्वामी से

पूछतीं, क्यों जी, कौन सी साड़ी पहनना ठीक रहेगा? स्वामी यदि कहता, यह साड़ी पहनो, इसमें बहुत अच्छी दिखोगी, तो उस साड़ी को पहने वे मुसकुराती हुई जल्दी-जल्दी कमरे में चली जातीं और फिर साड़ी पहन स्वामी के सामने आ खड़ी होतीं और चाहतीं कि वह एक बार फिर कहे, तुम कितनी सुंदर लग रही हो! सिर्फ़ यही नहीं, वे चाहतीं कि और लोग भी कहें, देखो, देखो, कितनी सुंदर लग रही है! मैं तो देख कर अवाक् रह जाती कि औरतों को साड़ी-गहने से इतना मोह है! इनके लिए इतना लालच, इतना लोभ! मैं उन्हें देखती कि ओठों पर, चेहरे पर ढेर सारा रंग पोत लिया और चल पड़ीं अपने स्वामी या किसी और आदमी के साथ घूमने! यह सब चीजें औरतें न जाने क्यों इतना पसंद करती हैं! मुझे यह सब एकदम ही अच्छा नहीं लगता। मुझे बचपन से ही अधिक सजना-धजना अच्छा नहीं लगता था। बचपन में मेरी दीदी मुझे पकड़ कर जबरदस्ती मेरी कंघी करती और बाल बाँधती। सहेलियों के साथ कहीं जाना होता तो सहेलियाँ ही कह-कहकर मुझे सजातीं-वजातीं। ब्याह के बाद भी इन सब चीज़ों का शौक मुझे नहीं हुआ। कहीं जाना भी होता तो बस जैसे-तैसे कंघी कर, मांग में सिंदूर लगा चल पड़ती। इस पर भी पाड़े की औरतें मुझे देखकर जलतीं। वे अगर अब मुझे देखतीं तो और भी जलतीं और इसको-उसको बुला, आपस में खुसर-फुसर करने लग जातीं क्योंकि साड़ी की जगह मैं शलवार-सूट जो पहनने लगी थी!

यहाँ आकर इस तरह की तुच्छ बातों से मैं बच गई यहाँ मुझे सबका स्नेह मिलता था। तातुश के लड़के विदेश से लौटते तो मेरे लिए कुछ न कुछ लेकर आते। मामा, माने अर्जुन दा की मा, आतीं तो वह भी मुझे कुछ न कुछ ज़रूर देतीं। मैं सोचती कि इन लोगों का इतना प्यार सँभाल भी पाऊँगी या नहीं! अब मुझे आश्चर्य होता है जब कोई कहता है कि वह इसके या उसके बिना नहीं रह सकता, जबकि पहले मैं भी सोचती थी कि अपने दुर्गापुर के कुछ बंधुओं को छोड़कर मैं नहीं रह सकूँगी। यह सब बस कहने भर की बातें होती हैं। जो पहले कहा करते थे कि इसके या उसके बिना नहीं रह सकेंगे, वे आज उनके बिना बड़े मज़े में हैं! मैं भी कुछ दिन बहुत उदास रही थी, जब अपने बंधुओं को छोड़कर आना पड़ा

था। धीरे-धीरे सब ठीक हो गया। बच्चों को पाल-पोसकर बड़ा करने की तरफ़ मैं अधिक ध्यान देने लगी और उसमें मुझे इतना सुख मिलने लगा कि अपने बंधुओं से बिछुड़ने के दुख की जगह मैं अब मानने लगी थी कि उनमें से कोई भी मुझसे मिलने न आए। मैं अपने बाल-बच्चों में मगन थी और इस बात से बहुत खुश थी कि उनकी पढ़ाई-लिखाई ठीक चल रही है। वे अब न तो पहले की तरह ज़रा-ज़रा सी बात पर रोने-चिल्लाने लगते, न ही बेमतलब इधर-उधर भटकते। बातें भी अब वे ऐसी करने लगे थे जैसी पहले कभी नहीं करते थे। अभी कुछ ही दिन हुए मैं रात के आठ-नौ बजे अपने बच्चों के साथ छत पर बैठी बातें कर रही थी कि हठात् मेरी लड़की ने पूछा, मा, तुम कभी स्कूल गई हो? मैं अवाक् हो उसकी ओर देखती रही और सोचने लगी कि इतनी ज़रा-सी बच्ची ऐसी बात पूछ रही है! अब भला मैं इसे क्या जवाब दूँ! मैं कुछ बोलती, इसके पहले ही उसने फिर कहा, मा, एक कविता सुनाओ न! मुझे क्या वह सब अब याद था! फिर भी जो दो चार लाइनें मन में आईं, उसे सुना दीं। वह खिलखिलाकर हँस पड़ी और बोली, इतनी बड़ी मा, और स्कूल की कविता सुनाती है! उसकी बात पर मुझे हँसी आ गई और कुछ दुख भी हुआ। मैंने सोचा मेरे बच्चे जब इस बात पर इतना हँस सकते हैं तो उस समय तो और हँसेंगे जब देखेंगे कि मैं हाथ में अखबार लिए बैठी हूँ क्योंकि मेरे हाथ में अखबार पहले कभी तो उन्होंने देखा नहीं।

यहाँ मैं रोज़ सबेरे अखबार देखती थी। अंग्रेज़ी न जानने से उसका सिर-पैर कुछ भी समझ नहीं पाती फिर भी तसवीरें देखकर तातुश से उनके बारे में पूछती। तातुश कहते, तसवीरों के नीचे बड़े-बड़े अक्षरों में जो लिखा है, उसे पढ़ने की कोशिश करो। मैं एक-एक अक्षर बोलती जाती और तातुश हूँ-हूँ करते जाते। जब सारे अक्षर खतम हो जाते तो तातुश पूरे शब्द का उच्चारण कर देते और उसका मतलब भी बता देते। बार-बार पूछने पर कभी-कभी वह उकता जाते क्योंकि वह अपना प्रिय अखबार द हिंदू ठीक से पढ़ नहीं पाते। शायद इसीलिए अखबार हाथ में लिए-लिए वह कहते, बेबी, जाओ, बच्चों को स्कूल नहीं भेजोगी? मैं कहती, हाँ, हाँ, भेजूँगी, अभी टाइम है। वह फिर कहते, कब भेजोगी? देर नहीं हो जाएगी!

जाओ। मैं घड़ी की तरफ़ देखकर उठ पड़ती। बच्चों को स्कूल भेजना ही तो कोई अकेला काम था नहीं। अर्जुन दा के उठने पर उसके लिए कुछ खाना-वाना भी तो बनाना होता। ठंडी रोटी वह खाता नहीं था इसलिए गरम-गरम बनाकर देनी होती। उसे अच्छी-अच्छी चीज़ें खाने का शौक था। चिकेन-विकेन, बिरयानी, पुलाव, कबाब, आलू-पराठा, पुदीना-पराठा, यह सब उसे अधिक पसंद था। साथ में टोमाटो सूप, चिकेन सूप, प्याज सूप जैसा कुछ हो तो और भी अच्छा। मैं उसका खाना उससे पूछकर ही बनाती। लोगों को कुछ बना-बनाकर खिलाना मुझे हमेशा से अच्छा लगता रहा है। मैं जब अपने स्वामी के पास थी तब भी कभी कुछ नया बनाती तो आस-पास के लोगों को भी खिलाती और इस पर से मेरा स्वामी मुझ पर बहुत गुस्सा करता।

लोगों को किताबें देखकर तरह-तरह की चीज़ें बनाकर खिलाना मुझे जितना अच्छा लगता, उतना ही अच्छा अब उपन्यास, कहानी, कविता पढ़ना और अखबार देखना लगने लगा था। अखबार देखते-देखते मुझ पर जैसे उसका नशा सा चढ़ गया था। तातुश उसमें से जो कुछ मुझे बताते वह सब मेरे लिए बिलकुल नया होता और वैसी बातें बार-बार सुनने-समझने के लिए मैं रोज़ सबेरे गेट पर खड़ी हो अखबार आने का रास्ता देखती।

उस दिन सबेरे उठने में मुझे थोड़ी देर हो गई थी। नीचे आई तो देखा तातुश स्वयं ही अखबार लाकर पढ़ रहे हैं। मैं जल्दी-जल्दी किचेन में गई और चाय बना लाई। उन्हें चाय देकर मैंने दूसरा अखबार उठा लिया और उसकी तसवीरें देखने लगी। तातुश बोले, तुम्हारी चाय कहाँ है! जाओ, ले आओ। मैं चाय लेकर खड़े-खड़े पीने लगी तो उन्होंने कहा, खड़ी क्यों हो? बैठ जाओ।

मैं एक कुर्सी पर बैठ गई और चाय का गिलास टेबिल पर रख, अखबार देखने लगी। हठात् तातुश बोले, बेबी, तुम्हें हम लोगों के पास माने, इस घर में आए एक वर्ष हो गया। तुम सोचकर देखो और मुझे बताओ कि तुम्हें कैसा लग रहा है? क्या-क्या तुम्हें अच्छा लगा और क्या बुरा? यहाँ आकर तुमने क्या कुछ सीखा? इतना कहकर तातुश फिर अखबार पढ़ने लगे। बेबी ने सोचा, भला यह भी कोई

पूछने की बात है! उसने उनकी बात का कोई जवाब नहीं दिया। वह जाकर खिड़की के पास खड़ी हो, आकाश की ओर देखने लगी। उसे अपनी मा की याद हो आई। उसकी मा की कितनी इच्छा थी कि उसके बच्चे पढ़-लिखकर अच्छे मनुष्य बनें लेकिन वैसा कहाँ हुआ! लिखना-पढ़ना तो उसका हुआ नहीं था फिर भी उसका महत्व वह ठीक-ठीक समझती थी और जब तक उन लोगों के साथ रही तब तक पढ़ने के लिए उनके पीछे सारे समय पड़ी रहती थी। मा आज होती और उसे पता चलता या स्वयं देखती कि उसकी बेबी आज भी पढ़ना चाहती है या पढ़-लिख रही है तो उसे कितनी खुशी न होती! आकाश की ओर देखती, जैसे वह अपनी मा से कहना चाहती है, मा, तुम एक बार आकर देख जाओ। मैं अभी भी लिखना-पढ़ना चाहती हूँ, अपने बच्चों को पढ़ाकर अच्छा बनाना चाहती हूँ। उन्हें बस तुम्हारा आशीर्वाद चाहिए, मा। वह अपनी मा से बातें कर रही थी और उसकी आँखों से बहते आँसू, छाती भिगोते, फ़र्श पर टपक रहे थे।

गिलास में चाय कब की ठंडी हो चुकी थी। तभी बेबी के कानों में किसी के पैरों की आहट पहुँची और वह चौंक पड़ी। उसने घूमकर देखा अर्जुन दा उठ चुका था और नीचे आ रहा था। उतरते-उतरते ही वह बोला, तुम लोग चाय पी रहे हो! मेरी चाय कहाँ है? वह चाय बनाने किचन में जाने लगी तभी देखा कि किसी ने गेट पर आ बेल बजाई। उसने जाकर देखा कि पड़ोस का लड़का हाथ में एक पैकेट लिए खड़ा है। वह उससे बोला, यह तुम लोगों का है, डाकिया भूल से हमारे यहाँ डाल गया था। उस लड़के से पैकेट ले, उसने आकर तातुश को दे दिया। तातुश ने देखकर कहा, यह तो तुम्हारा है! यह लो। जाकर देखो इसमें क्या है। पैकेट लेकर वह किचन में गई और अर्जुन की चाय का पानी चढ़ाकर उसने पैकेट खोला। पैकेट में एक पत्रिका थी। वह उसे पलटने लगी तो उसमें एक जगह उसने अपना नाम देखा। आश्चर्य से फिर देखा। सचमुच ही उसमें लिखा था, आलो-आँधारि[1], बेबी

1. अँधेरे का उजाला

हालदार! खुशी से उसका मन हिलोरें मारने लगा। मन की ऐसी उथल-पुथल में भी जेठू की वह बात याद आ गई कि आशापूर्णा देवी दिन भर के काम निबटाकर उस समय लिखने-पढ़ने बैठती थीं जब सब लोग सो चुके होते थे। उसने सोचा, जेठू ठीक ही कहते हैं कि घर के काम करते हुए भी लिखना-पढ़ना हो सकता है। हठात् उसकी नज़र चाय के लिए चढ़ाए पानी पर पड़ी जो उबलते-उबलते काफ़ी कम रह गया था। उसने जल्दी-जल्दी चाय बनाकर अर्जुन दा को दी और तब वह नीचे से ही देखो, देखो, एक चीज़! बोलती-बोलती ऊपर अपने बच्चों के पास पहुँची। दोनों बच्चे दौड़कर उसके पास आ गए। उसने उनसे कहा, बताओ तो यह क्या

लिखा है! उसकी लड़की ने एक-एक कर सभी अक्षर पढ़े और बोली, बेबी हालदार! मा, तुम्हारा नाम किताब में! दोनों बच्चे हँसने लगे। उन्हें हँसता देख उसका मन खुशी से और भी भर गया। उसने प्यार से उन्हें अपने पास खींच लिया। उन्हें प्यार करते-करते हठात्, जैसे उसे कुछ याद आ पड़ा। वह बच्चों से, छोड़ो, छोड़ो, छोड़ो, मैं अभी आती हूँ कहकर उठ खड़ी हुई नीचे आते-आते उसने सोचा वह कितनी बुद्धू है! पत्रिका में अपना नाम देख सभी कुछ भूल गई! जल्दी-जल्दी सीढ़ियाँ उतर वह तातुश के पास आई और उनके पैर छू प्रणाम किया। उन्होंने उसके सिर पर हाथ रख आशीर्वाद दिया।

अनुवादक - प्रबोध कुमार

* *पाठ में दिए गए सभी चित्र काल्पनिक हैं*

अभ्यास

1. पाठ के किन अंशों से समाज की यह सच्चाई उजागर होती है कि पुरुष के बिना स्त्री का कोई अस्तित्व नहीं है। क्या वर्तमान समय में स्त्रियों की इस सामाजिक स्थिति में कोई परिवर्तन आया है? तर्क सहित उत्तर दीजिए।
2. अपने परिवार से तातुश के घर तक के सफ़र में बेबी के सामने रिश्तों की कौन-सी सच्चाई उजागर होती है?
3. इस पाठ से घरों में काम करने वालों के जीवन की जटिलताओं का पता चलता है। घरेलू नौकरों को और किन समस्याओं का सामना करना पड़ता है। इस पर विचार करिए।
4. ***आलो-आँधारि*** रचना बेबी की व्यक्तिगत समस्याओं के साथ-साथ कई सामाजिक मुद्दों को समेटे है। किन्हीं दो मुख्य समस्याओं पर अपने विचार प्रकट कीजिए।
5. ***तुम दूसरी आशापूर्णा देवी बन सकती हो***– जेठू का यह कथन रचना संसार के किस सत्य को उद्घाटित करता है?
6. बेबी की ज़िंदगी में तातुश का परिवार न आया होता तो उसका जीवन कैसा होता? कल्पना करें और लिखें।

चर्चा करें

पाठ में आए इन व्यक्तियों का देश के लिए विशेष रचनात्मक महत्त्व है। इनके बारे में जानकारी प्राप्त करें और कक्षा में चर्चा करें।

श्री रामकृष्ण, रवींद्रनाथ ठाकुर, काज़ी नज़रुल इस्लाम, शरत्‌चंद्र, सत्येंद्र नाथ दत्त, सुकुमार राय, ऐनि फ्रैंक।

कुमार गंधर्व

(*सन्* 1924 - 1992)

जन्म सुलेभावि, ज़िला बेलगाँव (कर्नाटक)में। मूल नाम शिवपुत्र सद्धिदारमैया कामकली। मात्र 10 वर्ष की उम्र में गायकी की पहली मंचीय प्रस्तुति। उनके संगीत की मुख्य विशेषता मालवा लोक धुनों और हिन्दुस्तानी शास्त्रीय संगीत का सुंदर सामंजस्य है जिसका अद्‌भुत नमूना कबीर के पदों का उनके द्वारा गायन है। लोक में रचे-बसे लुप्तप्राय पदों का संग्रह कर और उन्हें स्वरों में बाँधकर कुमार गंधर्व ने इन्हें अंतर्राष्ट्रीय पहचान दी। इन्हें कालिदास सम्मान और पद्‌मविभूषण सहित बहुत से सम्मान से अलंकृत किया गया है।

अनुपम मिश्र

(*जन्म सन्* 1948)

जन्म वर्धा (महाराष्ट्र) में। पर्यावरण संबंधी मुद्दों पर बीस पुस्तकों का लेखन जिनमें ***आज भी खरे हैं तालाब*** और ***राजस्थान की रजत बूँदें*** विशेष चर्चित। पर्यावरण संबंधी कई आंदोलनों से न केवल घनिष्ठ रूप से जुड़े रहे हैं बल्कि लोगों को जागरूक करने के लिए मुहिम भी चलाई। सन् 1977 से गांधी शांति प्रतिष्ठान के पर्यावरण कक्ष से संबद्ध।

बेबी हालदार

(*जन्म सन्* 1974 *अनुमानित*)

जम्मू कश्मीर के किसी स्थान पर जन्म, जहाँ सेना की नौकरी में पिता तैनात थे। तेरह वर्ष की उम्र में दुगुनी उम्र के व्यक्ति से विवाह के कारण 7वीं कक्षा में पढ़ाई छोड़नी पड़ी। 12–13 वर्षों बाद पति की ज़्यादतियों से परेशान होकर तीन बच्चों सहित पति का घर छोड़ दुर्गापुर से फ़रीदाबाद आ गई। कुछ समय बाद गुड़गाँव चली आई। बांग्ला में लिखी एवं हिंदी में अनूदित **आलो-आँधारि** एक मात्र पुस्तक। वर्तमान में गुड़गाँव में घरेलू नौकरानी के रूप में कार्यरत।